गुणमूर्त ब्रह्मा बाबा

ब्रह्मा बाबा अपने लौकिक जीवन में खिदरपुर के बादशाह के रूप में प्रसिद्ध थे। उनके घर पर चार-चार सेविकाएँ थीं और भारत भर में कई स्थानों पर उनका हीरे-जवाहरात का व्यापार चलता था। अनेक सहयोगियों, नौकरों और संयुक्त परिवार के बीच रहते वे सबके प्रिय भी थे, सबके आदर्श भी और सर्व के मार्गदर्शक भी। ऊँची कमाई वाला धंधा होते भी सच्चाई और ईमानदारी, धनी होते हुए भी धन के दुरुपयोग से मुक्त, समाज के उच्च वर्ग में सम्मानित होते हुए भी अहम भाव से मुक्त, पुरुष प्रधान समाज में रहते हुए भी नारी को प्रधानता देने वाले – ये उनके चरित्र की चादर में जड़े हुए हीरे समान मूल्य थे।

सन् 1936-37 में जब उन्हें दिव्य साक्षात्कार हुए और परमात्मा शिव की उनके तन में प्रवेशता हुई तो उन्होंने अपना सब कुछ माताओं-बहनों के आगे समर्पित कर दिया। इसके बाद स्वयं पैसे को हाथ नहीं लगाया और चौदह वर्षों तक समर्पित हुए चार सौ बच्चों की पालना उसी पैसे से करते रहे। धन-वैभव और साधनों के प्रति पूर्ण अनासक्ति के साथ-साथ उनका एक मुख्य गुण जोकि उनके व्यक्तित्व में सदा झलकता रहता, उनके चारों ओर पवित्रता बिखेरता रहता और लोगों के जीवन को पलट देता रहा, वह था – आत्मिक दृष्टिकोण। बाबा स्वयं आत्म-स्थिति में रहते हुए, सब देहों में आत्मा ही को देखते। बाबा की क्लास (ज्ञान-सभा) में छोटे बच्चे भी बैठे होते, बूढ़े भी उपस्थित होते, ग्रामीण भी होते और बड़े-बड़े नगरों में ठाठ-बाट से रहने वाले व्यक्ति भी विराजमान होते। परंतु बाबा सबको आत्मिक दृष्टि से देखते। यदि किसी अन्य उच्च वक्ता की सभा में छोटी आयु वाले बच्चे बैठे हों तो वह मन में सोचेगा कि ये बच्चे भला मेरी गहरी बातों को क्या समझेंगे अथवा ये अत्यंत वृद्ध आयु वाले शक्तिहीन व्यक्ति मेरी इन अनमोल बातों को सुनकर क्या करेंगे? परन्तु बाबा तो यही देखते कि ये भी आत्माएँ हैं। किसी की कर्मेन्द्रियाँ रूपी उपकरण अविकसित हैं, किसी के जर्जरीभूत, परंतु इन आत्माओं का भी येन-केन-प्रकारेण कल्याण तो करना ही है। अत: वे ऐसे सरल, स्पष्ट, सुबोध और सरस तरीके से अत्यंत उच्च आध्यात्मिक सत्यों को दर्शाते कि बालक, वृद्ध, सभी उनको भली-भाँति समझकर कल्याण के भागी बनें, तभी तो वे सभा के बाद छोटे व बड़े, हरेक शरीरधारी आत्मा से अलग बैठ करके भी उसे ज्ञान-धन से लाभान्वित करते, उसे पितृवत स्नेह देते, उसके मन की उलझनों को दूर करते, उसे आत्मा तथा परमात्मा का बार-बार परिचय देते, सृष्टि के आदि-मध्य-अंत का हाल सुनाते और उसे यथायोग्य ईश्वरीय सेवा में लगाकर आत्मिक स्थिति में स्थित कर देते।

दिखाई देती बाबा की भृकुटी में दिव्य ज्योति

बाबा की आत्मिक स्थिति इतनी तो उच्च और प्रभावशाली थी कि उनके पास बैठे हुए वत्स प्राय: ऐसा महसूस करते कि वे अपनी देह से न्यारे हो रहे हैं। वे भार-शून्यता अथवा हल्कापन अनुभव करते और उनके मन में अशुद्ध संकल्प शान्त हो जाते। उस समय वे शुद्ध पुरुषार्थ एवं आध्यात्मिक जीवन के लिए प्रेरित होते और उन्हें अपनी अवस्था की उच्चता में कमी खटकने लगती तथा पावन बनने की अन्त: प्रेरणा मिलती। बहुत-से पुरुषार्थियों को तो कई बार कुछ समय के लिए इस संसार का अनुभव न रहता बल्कि उनके नेत्र मानो दिव्य-दृष्टि से युक्त होकर बाबा के चारों ओर दिव्य आभा अथवा श्वेत अव्यक्त प्रकाश को देखते और उस समय का अलौकिक अनुभव उन्हें इतना भाता कि उनका मन चाहता कि बस, इस अवस्था का, इसी आत्मिक सुख का हम रस लेते ही रहें। उन्हें बाबा की भ्रकुटि में एक दिव्य ज्योति प्रकाशमान दिखाई देती और वे एक ऐसे आत्मिक सुख तथा सच्ची शान्ति का अनुभव करते कि बस, उसी में टिके रहना चाहते। किन्हीं के मन में कोई प्रश्न होते तो उनका उत्तर उनके अंतर्मन में उन्हें मिल जाता। वे बाबा के आध्यात्मिक प्रभाव से अभूतपूर्व स्नेह और सुख अनुभव करते। जो दुखी और चिन्तित अवस्था में बाबा से मिलने आता, वह मुस्कराता हुआ और शान्त होकर लौटता। प्राय: लोगों को ऐसा लगता कि वे (आत्मा) जिस पिता को जन्म-जन्मान्तर से ढूँढ़ रहे थे, वह उन्हें मिल गया है।

सबके शुभचिन्तक

बाबा कभी भी किसी का अशुभ या अमंगल नहीं सोचते। दूसरों को भी वे सदा यही शिक्षा देते कि न किसी के अकल्याण की बात सोचो और न कभी मुख से अशुभ बोलो। वे यह भी कहते कि जिस-किसी भी जिज्ञासु को आप ईश्वरीय ज्ञान सुनाने लगते हैं, उसके लिए भी पहले मन-ही-मन शिव बाबा को याद करके कहो – ''शिव बाबा! यह भी किसी तरह समझ जाये, इसकी भी अन्तरात्मा के कपाट खुल जायें और इसका भी कल्याण हो जाये, और फिर जब आप योग में बैठें तो उस अवस्था में उस व्यक्ति को भी अपनी अंतर्दृष्टि के सामने लाकर, उसे भी योग का दान दें ताकि उसका मन निर्मल हो जाये और ईश्वरीय ज्ञान का बीज उसमें अंकुरित हो।'' देखिये तो, साकार ब्रह्मा बाबा किस पराकाष्ठा तक सभी के शुभचिन्तक थे! बाबा कहते कि हमें अपकारी पर भी उपकार करना है और जो हमारी निन्दा करता है उसे भी अपना मित्र समझना है। वे कहते कि किसी के प्रति शुभचिन्ता का सबसे श्रेष्ठ रूप यह है कि हम उसकी बुरी आदतों को सुधार दें और उसका योग परमपिता परमात्मा से जुटा दें।

अपार उत्साह और अदम्य हिम्मत

बहुत कोशिश करने पर भी यदि कोई कार्य संपन्न न होता तो भी अंतिम क्षण तक बाबा उसके लिये पूरा प्रयत्न करते तथा कराते रहते। पुरुषार्थ की चरम सीमा देखनी हो और हिम्मत तथा उत्साह की पराकाष्ठा जाननी हो तो ये दोनों पिताश्री अर्थात् साकार ब्रह्मा बाबा के जीवन में सदा स्पष्ट मिलते। कभी भी किसी ने उनमें उत्साह की कमी, पुरुषार्थ के प्रति उदासीनता या हारी हुई हिम्मत या आलस्य को नहीं देखा होगा। उन्हें कोई भी कार्य अधूरा छोड़ना, अपूर्ण रीति से करना अथवा बिना कोई परिणाम निकाले उसे छोड़ देना, अच्छा नहीं लगता था। वे हरेक कार्य को द्रुत गति से परंतु सोच-समझकर और योगयुक्त होकर करने के लिए कहते और वे स्वयं इस विषय में आदर्श थे। पूरा पुरुषार्थ करने के बाद जैसा भी परिणाम होता उसे वे 'भावी' या 'ड्रामा' कहकर सदा प्रसन्न रहते तथा उसी में कल्याण मानते। वे गतकाल के वृत्तांत से शिक्षा लेकर, नि:संकल्प होकर आगे बढ़ने को कहते। अत: वे बार-बार किसी कार्य के पीछे वत्सों को लगाकर भी उन्हें हिम्मतवान बनाते हुए सफलता तक लाने में तत्पर रहते। ऐसे अथक पुरुषार्थ करने के कारण ही तो वे 'भगीरथ' अर्थात् परमपिता परमात्मा के भाग्यशाली रथ (माध्यम) बने और ज्ञान-गंगा को लाने के निमित्त बने।

स्वयं मेहनत करके दूसरों को प्रेरणा देना

बाबा यज्ञ के स्थूल कार्य भी पहले स्वयं करने लग पड़ते। दूसरों को कहने की बजाय वे स्वयं करने लग जाते। इतनी वृद्ध आयु में उन्हें स्थूल-से-स्थूल कार्य में लगे देखकर अन्य लोग दौड़ कर उस कार्य को करने लगते। वे कहते – ''बाबा! यह तो हम युवा-वर्ग वालों का कार्य है। बाबा, आप ऐसे स्थूल कार्य क्यों करते हो?'' तब बाबा कहते – ''इस ईश्वरीय यज्ञ की सेवा बड़ी मधुर और प्यारी लगती है। यह मन को बहुत भाती है। बच्चे! सारे कल्प में एक ही बार तो शिव बाबा यह सर्वोत्तम ज्ञान-यज्ञ रचते हैं, उसके लिए वे इस वृद्ध तन में आते हैं, तो क्या इस तन को 'वृद्ध' देख कर मैं कल्प-कल्पांतर स्थूल सेवा ही न करूँ? मैं भी तो शिव बाबा का स्टूडेन्ट (विद्यार्थी) हूँ। यदि मैं इस शरीर से कोई कार्य नहीं करूँगा तो मुझे कैसे निरोगी व कंचन काया मिलेगी? बच्चे, सर्विस करने की हिर्स (लालसा) तो होनी चाहिए। दधीचि ऋषि के समान इस यज्ञ की सफलता के लिये अपनी हड्डियाँ भी दे देनी हैं तभी तो शरीर पावन बनेगा। हम ब्राह्मणों का यह सेवा का जीवन कैसा सुहावना है! ऐसा अवसर तो सारे कल्प में फिर कभी मिलता ही नहीं। जबकि शिव बाबा ही कहते हैं कि मैं आप बच्चों का फ़रमाँबरदार सेवक हूँ तो मैं भी आप बच्चों का सेवाधारी हूँ।'' इस प्रकार के वचन जब बाबा बोलते और स्वयं भी सेवा में जुटे रहते तो सोचिये कि किसके मन को कार्यरत होने के लिए प्रेरणा नहीं मिलती होगी; रात्रि की क्लास में भी बाबा प्राय: पूछा करते – ''लाडले बच्चो! बताओ और कोई सेवा है बाबा के लिये? यह बाप भले ही ऊँचा बनाने वाला है परंतु फिर भी बच्चों का गुलाम है।''

बाबा सदा यही शिक्षा देते कि यथासंभव अपना कार्य स्वयं करो ताकि आप पर कर्मों का बोझ न चढ़े।

खुशी में लाना और हल्का करना

बाबा सदा खुशी में रहते और सदा ऐसी ही बातें सुनाते कि कोई मनुष्य कितना भी अशान्त क्यों न हो, चाहे कितनी भी उलझनों में पड़ा हुआ हो, बाबा की मधुर मुस्कान को देखते ही उसकी उदासी और चिन्ता भाग जाती और उसकी खुशी का पारा चढ़ जाता। किसी ने भी आज तक बाबा के चेहरे पर चिन्ता या उदासी की रेखा नहीं देखी। इस ईश्वरीय विश्व विद्यालय की स्थापना के समय से लेकर अंत तक न जाने कितने विघ्न, विरोध, आपदायें और तूफान आये परंतु बाबा सदा कहते – ''बच्चे, सत्य की बेड़ी डोलेगी परंतु डूबेगी नहीं। बच्चे, कल्प पहले भी यह हुआ था, यह कोई नई बात नहीं है; सच्चाई की स्थापना करने वालों के सामने ऐसा होता ही है।''

बाबा कहते – '' बच्चे, आप ही पवित्र रहने वाले सच्चे ब्रह्मा कुलभूषण हो। अत: आप पद्मापद्म भाग्यशाली हो। '' इस प्रकार, बाबा बच्चों को सदा खुशी और उल्लास में लाते रहते और कहते – ''बच्चे! माया के विघ्न तो बहुत ही आयेंगे, संबंधियों या लोगों की ओर से विरोध भी होगा, बहुत तूफान भी आयेंगे परंतु घबराना नहीं और हिम्मत मत हारना। जबकि आपने शिवबाबा को हाथ दिया है तो आपका अकल्याण नहीं हो सकता। अब आपकी 'चढ़ती कला' है, इसलिये सदा यह सोचते हुए चलो कि सर्व-समर्थ शिव बाबा हमारे साथ है। ऐसा निश्चय रखने वाले निश्चयात्मा की विजय होती है। आप मनोविकारों पर विजय पाने का पुरुषार्थ करने वाले 'विजयी रत्न' हो, विजय का तिलक तो आपके माथे पर मानो लगा ही हुआ है। बस, आप इतना करना कि घबराना नहीं, थकना नहीं और रुकना नहीं, ग़फ़लत मत करना और आलस्य मत करना, बल्कि जो राह अब शिव बाबा दिखा रहे हैं, उस पर चलते रहना।'' इस प्रकार बाबा विघ्नों को 'ऊँचे पद की निशानी', परीक्षाओं को 'उच्च पुरुषार्थ की प्रतिक्रिया', बड़े तूफानों को 'ऊँची मंज़िल के नज़दीक पहुँचने का चिह्न' बताकर सदा यही कहते कि – 'बच्चे! ये सब अन्तिम सलाम करने आये हैं। बस, ईश्वर के सदके (प्रेम में) इनको पार करो तो आपके कदम-कदम में पद्मापद्म की कमाई होगी।' बाबा कहते कि सच्ची खुशी तभी होगी जब विकर्म करना बंद करोगे और आत्मिक स्मृति तथा ईश्वरीय स्मृति में स्थित होवोगे। उस अवस्था में खुशी का पारावार नहीं रहेगा। इन युक्तियों से बाबा नित्य-प्रति सबको खुशी का प्याला पिलाते हुए उनमें नया दम, नया जोश भरते हुए, उन्हें ऐसे तो ले चलते रहते कि मनुष्य को सब अशुद्ध संकल्प भूल जाते, समस्याएँ हल्की मालूम होतीं और मनोविकार उनसे सहज ही छूट जाते।

योगी जीवन का परम आदर्श

– भ्राता जगदीश चन्द्र

पार्टी के भाई-बहनों साथ बाबा और दादी जी

परमपिता परमात्मा शिव ने प्रजापिता ब्रह्मा द्वारा जो योग सिखाया वह अद्भुत और अद्वितीय ही है। उन्होंने 'योग' की जो परिभाषा और व्याख्या दी, वह भी अनुपम है; उस जैसी व्याख्या या परिभाषा अन्य किसी ने कभी भी नहीं दी।

लगन में मगन होना ही 'योग' है

महर्षि पतञ्जली ने कहा है कि "चित्त की वृत्तियों का निरोध ही योग है।" लोग इस परिभाषा के अनुरूप चित्त की वृत्तियों का निरोध करने का ही प्रयत्न करते रहते हैं। वे चित्त की एकाग्रता को किसी कृत्रिम साधन पर और किसी प्रकृति की वस्तु या उसके कल्पना-चित्र पर या केवल गुणों पर टिकाने का यत्न करते रहते हैं और योग को अत्यन्त कठिन क्रिया बताते हैं।

'चित्त' क्या है और 'वृत्ति' किसे कहते हैं, इस पर ही चिन्तकों ने अनेक टीकायें लिख डाली हैं। परन्तु योगीकुल शिरोमणि बाबा ने अत्यन्त सरल, मधुर, प्रेरणादायक तथा क्रियात्मक दृष्टि से सहज परिभाषा की है कि "लगन में मगन होना ही योग है।"

जहाँ किसी की लगन होती है, वहाँ उसका मन स्वतः और सहज ही मगन होता है। विशेषतः यदि लगन तीव्र हो तो मगन भी अच्छी तरह तथा सहज ही होंगे। अतः बाबा की 'योग' की यह परिभाषा मनोवैज्ञानिक एवं व्यवहारिक दृष्टि से अतुल है। हमारा प्यार शिव बाबा से सर्वाङ्गीण एवं सम्पूर्ण होना चाहिए; तब हमारा मन तो स्वतः ही उधर दौड़ा जायेगा और टिक जायेगा।

आत्मा का परमात्मा से सम्बन्ध ही 'योग' है

बाबा ने योग की एक और व्याख्या यह दी है कि 'योग' शब्द परमात्मा के साथ आत्मा के सम्बन्ध का वाचक है। भक्त लोग महिमा करते हुए कहते हैं कि "हे प्रभु, आप हमारी माता, हमारे पिता, हमारे बन्धु, सद्गुरु आदि हो। इन्हीं सम्बन्धों को आत्म-भाव के आधार पर परमात्मा से जोड़ना ही 'योग' है।

सम्बन्धों का केवल वर्णन करना योग नहीं बल्कि उन सम्बन्धों में प्रेम अनुभव करना तथा व्यवहारिक रूप से अर्थात् मन, वचन, कर्म से उन सम्बन्धों की मर्यादा के अनुकूल चलना ही 'योग' है। शिव बाबा के साथ हरेक आत्मा का सम्बन्ध तो है ही परन्तु उस **सम्बन्ध को जानना, मानना, याद रखना, व्यवहार में लाना और जीवन को उन सम्बन्धों के साँचे में ढालना और विशेष बात यह है कि उन सभी सम्बन्धों के प्रेम-समूह में समा जाना अर्थात् उनसे विभोर हो जाना ही 'योग' है।** 'आत्मा' निश्चय करने और परमात्मा की याद में स्थित होने की यह कैसी सर्वोत्तम व सहज विधि है जिससे आत्मा को परमात्मा के सर्व सम्बन्धों की अनुभूति होती है!

याद की यात्रा ही 'योग' है

भक्त लोग सिमरणी लेकर परमात्मा को याद करते हैं और किसी तीर्थ-स्थान

पर यात्रा के लिए भी जाते हैं और यात्रा करते समय भी कई बार परमात्मा का जयघोष करते चलते हैं। परन्तु याद, यात्रा और योग का बाबा ने जो समन्वय किया है, उसकी तो कोई तुलना ही नहीं। परमधाम जहाँ शिव बाबा स्वयं रहते हैं, उससे बड़ा और तीर्थ-स्थान भला कौन-सा हो सकता है? वहाँ कभी अपवित्रता व अशान्ति का तो नाम ही नहीं होता। यात्रा के लिए लोग जिन तीर्थ-स्थानों पर जाते हैं, उनके साथ 'पुरी' या 'धाम' शब्द प्रायः जुड़ा रहता है (जैसे जगन्नाथ पुरी, द्वारका पुरी, बद्रीनाथ धाम) या वह कोई 'घाट' या 'तट' होता है या फिर 'द्वार' शब्द उसके साथ जुड़ा हुआ रहता है। परमधाम ही वास्तव में हरि का द्वार है अथवा इस संसार से पार उस ओर का तट या घाट है जहाँ जाने से मन को सब तीर्थों की यात्रा का फल मिल जाता है। परन्तु वहाँ किसी बस, रेल, जलपोत या वायुयान या अन्तरिक्ष-यान से तो जा नहीं सकते क्योंकि वह तो सूर्य, चाँद और तारागण के भी पार है और वहाँ शरीर का प्रवेश नहीं हो सकता। वहाँ केवल मन द्वारा ही जा सकते हैं और मन की यात्रा ही तो सच्ची यात्रा है। इस प्रकार, **मन द्वारा सूर्य, चाँद, तारों के पार जाकर शिव बाबा को परमधाम में याद करना 'याद की यात्रा' है जिसे बाबा ने योग कहा है।** देखिये तो, यह योग की कितनी सुन्दर व्याख्या है! जिसे शिव बाबा या परमधाम का परिचय न हो, वो यह याद की यात्रा कर ही नहीं सकता। भक्त लोग जब भगवान को याद करते हैं, तो भगवान के नाम व स्वरूप का ज्ञान न होने के कारण उनकी याद की यात्रा नहीं होती बल्कि वे इसी दुनिया में ही होते हैं।

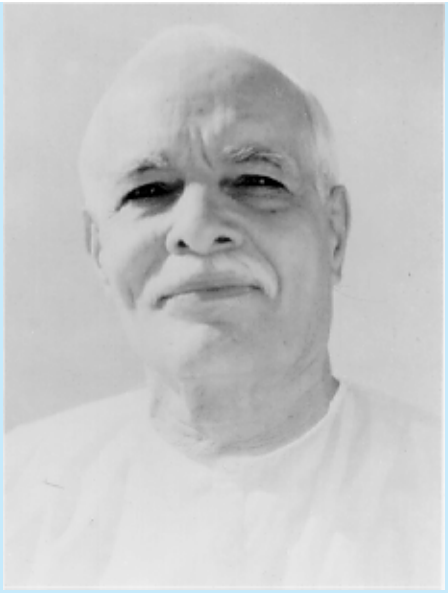

आत्मा का परमात्मा के साथ बेतार का तार जोड़ना ही 'योग' है

संसार में लोग टेलीफोन से अथवा वायरलैस से एक-दूसरे से सम्पर्क करते हैं परन्तु उसमें इन्द्रियों का प्रयोग तो होता ही है और वे देह तथा इस संसार के भान में तो होते हैं। विदेह अथवा देहातीत अवस्था में स्थित होकर आत्मा के स्वरूप का, परमात्मा के स्वरूप का सम्पर्क स्थापित करना एक निराली रीति का ही सम्बन्ध है। बेतार की तार (wireless connection) से ऐसे आत्मिक सम्पर्क को बाबा ने 'योग' कहा है। योग की यह कैसी सूक्ष्म परिभाषा है और यह कैसा महान् विज्ञान है!

आत्मा का परमात्मा से मिलन ही 'योग' है

आत्मा व परमात्मा का मिलन तो एक ऐसा मिलन है कि जिसकी तुलना संसार के किसी मिलन से नहीं की जा सकती। इस मिलन की अनुभूति तो संसार की सबसे श्रेष्ठ उपलब्धि है। ऐसे 'मिलन' को बाबा ने योग कहा है जबकि आज लोग कृत्रिम एकाग्रता को ही योग मानकर परमात्मा से मिलन का यत्न करते हैं।

इस प्रकार, हमने योग की जो परस्पर पूरक परिभाषायें दी हैं, उनसे ही स्पष्ट है कि बाबा की योग के विषय में कहाँ तक पहुँच थी और उसमें उनकी क्या अनुभूति थी! वास्तव में जिन्होंने उनका सम्पर्क किया, वे इस बात को भलीभाँति जानते हैं कि बाबा ने भाषा, दर्शन, व्याकरण आदि को सामने रखकर 'योग' की परिभाषायें नहीं दीं बल्कि अनुभव के आधार पर योग के विषय को स्पष्ट करने के लिए उन्होंने ये महावाक्य उच्चारण किये। ये गागर में सागर भरने के समान हैं और इनमें अनुभव की बहुत गहराई भरी हुई है। इन तथा अन्य योग सम्बन्धी महावाक्यों को सुनने पर कोई भी समझ सकता है कि ये अनुभव-जन्य हैं।

दो शब्दों में हम यह कह सकते हैं कि बाबा एक आदर्श योगी थे अथवा योगियों के लिए वे आदर्श थे क्योंकि वे कार्य करते हुए भी लगन में मगन रहते थे और जो कोई भी उनके सम्पर्क में आता था, वह उनसे प्रभावित हुए बिना नहीं रह सकता था। उस योगीकुल शिरोमणि पितामह की योग-स्थिति को सामने रख हम पुनः योग के पथ पर आगे बढ़ने का दृढ़ संकल्प लें।

एक बल, एक भरोसा - साकार बाबा की विशेषता

– भ्राता जगदीश चन्द्र

पहाड़ी पर शिव बाबा के लगन में मगन मम्मा, बाबा और अन्य दादियाँ

साकार बाबा के जीवन में सभी ने सतत्-निरन्तर ये बात निरपवाद रूप से देखी कि बाबा का समूचा जीवन 'एक बल, एक भरोसे' पर ही टिका था। शारीरिक बल, धन का बल, क़ानून का बल, सिफ़ारिश का बल इत्यादिह्न ये अनेक बल बहुत बार कठिनाई के समय काम नहीं भी आते। मित्र-सम्बन्धी, संगठन, सभी पर भरोसा करके मनुष्य अपने जीवन को चलाता तो है परन्तु अन्त तक जो अमोघ बल काम में आता है वह नैतिकता का बल, चरित्र का बल, रूहानियत का बल, आत्म-विश्वास का बल और कर्म की महानता का बल ही होता है। दूसरे बल कई बार मनुष्य में अभिमान पैदा करते हैं और अभिमान से हानि अथवा असफलता भी होती है परन्तु पूर्वोक्त रूहानी बल के प्रयोग से अगर कहीं हानि अथवा असफलता अथवा पराजय भी दिखायी दे, तो उसे भी सफलता, लाभ अथवा विजय ही मानना चाहिए। उससे उज्ज्वल भविष्य की नींव तो पड़ ही जाती है। भले ही सफलता रूपी इमारत अभी दिखायी न देती हो परन्तु आगे चलकर वह सामने आती है।

ऐसे ही, **एक शिव बाबा का ही भरोसा ऐसा है, जो मनुष्य को गिरने से बचाये रखता है। जो उस सर्वसमर्थ पर पूरा भरोसा करता है, उसके सिर पर लदा हुआ भार उसके सिर से उठ जाता है और उस भरोसे से ही उसकी भलाई होती है।** ऐसा भरोसा करने वाला यदि सजग हो तो उसे सदा ईश्वरीय सहायता मिलती ही है। ऐसा हो ही नहीं सकता कि समय पर बल और बचाव की बजाय उसे धोखा मिले। इसे आज़मा कर देखें। साकार बाबा के जीवन की

सफलता का भी यह एक अचूक शस्त्र था। एक बल और एक भरोसाह्न इन दो पतवारों से ही जीवन नैया को पार करने की विधि तथा सिद्धि उन्होंने अपने प्रैक्टिकल उदाहरण से सिखायी। किसी के ईश्वरीय सेवा के कार्यक्षेत्र में यदि विघ्न आये या व्यक्तिगत जीवन में कोई संघर्ष आ उपस्थित हो तो सादगी, सत्यता, सरलता, स्नेह, नैतिकता से जीवन व्यतीत करते हुए "एक बल और एक भरोसा"ह्न यह फार्मूला अपनायें तो अवश्य सफलता मिलेगी।

प्रसंग को समझना ज़रूरी

यूँ बाबा के जीवन के विधि-विधानों से अनगिनत प्रेरणायें मिलती हैं परन्तु हम पहले ही बता आये हैं कि साधारण रूप द्वारा गुह्य भाषा में महावाक्य होने के कारण बहुत लोग उन महावाक्यों का मर्म समझ नहीं पाते। उसका एक कारण कई बार यह भी होता है कि उन्हें बाबा के किसी महावाक्य का प्रसंग (context) ज्ञात नहीं होता। आख़िर जब-कभी कोई बात कही जाती है, तब वो किसी प्रसंग में ही तो कही जाती है। **यदि वह प्रसंग ही न मालूम हो तो अलग-अलग लोग उसका अलग-अलग अभिप्राय अथवा अलग-अलग अर्थ निकालेंगे। वे अर्थ नहीं, अटकलें होंगी, तुक्का होगा। इससे मर्म समझने की बात तो एक ओर रही, सुनने या पढ़ने वाले को भ्राँति भी हो सकती है और वो मार्ग से भटक भी सकता है।** अतः प्रसंग को जानना बहुत ही आवश्यक है। कोई बात किस अवसर पर, किन परिस्थितियों में, किन गुण-कर्म-स्वभाव वालों को, किस लक्ष्य से कही गयीह्न यह बोध ज़रूरी है। अतः यदि

बाबा की वाणियों को पढ़ने से किसी के मन में कुछ ऐसे प्रश्न या ऐसे भाव उत्पन्न होते हैं जो कि उसके मन को नहीं सुहाते या ज्ञान के प्रति उसके मन में अरुचि अथवा अमान्यता पैदा करते हैं, उसे ईश्वरीय विश्व विद्यालय से हटकर किसी दूसरी दिशा में जाने की उकसाहट पैदा करते हैं, तो उसे चाहिए कि वह पहले किसी वरिष्ठ बहन या भाई से उसके प्रसंग को जानने की कोशिश करे और उसके बाद ही ऐसा-वैसा नकारात्मक संकल्प करे। **आज भी कई व्यक्ति प्रसंग को जाने बिना ग़लत अर्थ करके स्वयं भी सत्यता से वञ्चित होते और दूसरों को भी भ्रमित करते हैं।** जो लोग बाबा के साथ रहे हैं, जिन्होंने सम्मुख मुरलियाँ सुनी हैं, जिन्हें सही प्रसंग ज्ञात है या जिन्हें दिव्यदृष्टि प्राप्त है और जो निःस्वार्थ और निर्मल जीवन वाले योगी हैं, उन द्वारा सत्यान्वेषी, पहले निष्पक्ष भाव से प्रसंग को जान लेंह्न यही प्रीति की रीति है। अपने मन के या किसी अन्य के बहकावे में आने से अपना बचाव करना भी तो आना चाहिए। जो बहकाता है उसे भी सामने लाना चाहिए ताकि वह भी प्रसंग को जानकर भ्राँति से निकल सके। हम प्यारे ब्रह्मा बाबा के श्रीमुख द्वारा विनिस्मृत ज्ञानामृत का पान कर और अव्यक्त अनमोल महावाक्यों का अविनाशी धन ग्रहण कर स्वयं को धन्य-धन्य करने का पुरुषार्थ तीव्र करें और इसके लिए सही प्रसंग को जानें। बाबा के प्रति हमारे यही श्रद्धा-सुमन हैं। हमें जो भ्राँत करता हो उसे बड़ों के सामने लाकर उसका भी भला करें। यही वफ़ादारी है। अटल निश्चय की यही निशानी है।

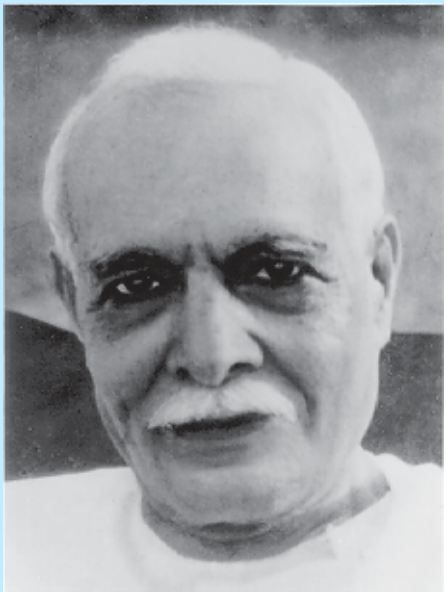

ब्रह्मा बाबा नयी सृष्टि का रचयिता

– भ्राता जगदीश चन्द्र

प्रजापिता ब्रह्मा अद्भुत एवं अनुपम योगी, तपस्वी, ज्ञानी, आचार्य, प्रशासक, दार्शनिक, विद्वान, विधि-प्रदाता (Law-giver), प्रशासक इत्यादि हुए हैं। उन्होंने जो शिक्षा-दीक्षा, उपदेश-आदेश, मार्ग-निर्देश इत्यादि दिये, वे अलग श्रेणी अथवा कोटि के थे। प्रजापिता ब्रह्मा ही को शास्त्रों, पुराणों इत्यादि में नयी सृष्टि का रचयिता, नियामक, विधि-प्रदाता (Law-giver) और धर्म-ज्ञान प्रदाता, जीवन-दर्शन का उपदेष्टा और आदि पितामह कहा जाता है। अन्य जो सुधारक, प्रचारक, संस्थापक, उपदेशक इत्यादि हुए हैं, उनमें से किसी को भी नयी सृष्टि का रचयिता अथवा आदि सनातन धर्म का संस्थापक (Founder of the Foremost Religion) अथवा सारी सृष्टि का आदि पिताश्री (Progenitor of the Human Family) या आचार्यों का भी आदि आचार्य नहीं कहा जाता। यद्यपि वे लोग त्यागी, मनीषी, विचारक, साधक, भक्त, विरक्त, अनासक्त एवं साधु स्वभाव के थे और उन्होंने आचरण-सम्बन्धी संहिताओं के अनेक नियमों का भरसक पालन भी किया तथा अन्य लोगों के सामने उदाहरण भी प्रस्तुत किया तथापि उन्होंने नयी सृष्टि का बीजारोपण नहीं किया।

इस बात का किसी को भी बुरा नहीं मानना चाहिए क्योंकि यह तो परिणाम से भी सिद्ध है। यह ऐतिहासिक सत्य तो हम सभी के सामने ही है क्योंकि सृष्टि द्वापर और कलियुग में से गुज़रती हुई अब कलियुग के सीमान्त पर आ पहुँची है। सुधि-बुधि वाला कोई भी व्यक्ति यह तो

बाबा के साथ दादी जी, डॉ निर्मला दीदी जी तथा अन्य बहनें

नहीं कह सकता कि अब हम सतयुग में से गुज़र रहे हैं। कोई भी यह तो दावा नहीं कर सकता कि किसी भी ऋषि, मुनि, तत्त्ववेत्ता, दार्शनिक, धर्मोपदेशक या आचार्य के सिद्धान्तवाद, साधना-पद्धति, कर्म-विधान इत्यादि को जानने, मानने और व्यवहार में लाने से इन दो-ढाई हज़ार अथवा सैंकड़ों वर्षों के बाद भी हम सतयुग की ओर जा रहे हैं। उन सभी के बाद तो वाद-विवाद-प्रतिवाद और एक अन्य वाद की ही शृंखला चल पड़ी और मनुष्य प्रमाद और विषाद ही के रंग में रंगता गया।

यह बात विवेक-संगत और न्याय-संगत है कि सृष्टि अथवा वैश्विक समाज (World wide society) के नवीनीकरण (renewal) के लिए तो समाज में समूल परिवर्तन लाने की आवश्यकता है। एक नये जागतिक समाज (Global society) की स्थापना के लिए तो सृष्टि रूपी वृक्ष में कोई नयी टहनी जोड़ने की ज़रूरत नहीं है बल्कि नये बीजारोपण की आवश्यकता है। समाज में तो अनेकानेक वर्ग हैं, जातियाँ हैं, सम्प्रदाय हैं, वर्णाश्रम हैं, संस्थायें हैं और भिन्न-भिन्न रुचि वाले व्यक्ति हैं जो कि अलग-अलग संस्कारों का रंग लिये हुए हैं। समाज में साधु-सन्त और पंडित-पुजारी

भी हैं, जेल के क़ैदी भी, भोले-भोले बच्चे और प्रकाण्ड विद्वान भी, सेना के सेनानी और धनी-मानी भी। अतः समाज के नवीनीकरण के लिए तो इन्हें ढाल कर एक जुट करने तथा भेदभाव को मिटाने की ज़रूरत है। इसके लिए इस प्रकार के भाँति-भाँति के लोगों को एक नयी सृष्टि, नयी वृत्ति, नयी स्मृति और नये प्रकार की उच्च स्थिति प्रदान करना तो एक ऐसा भगीरथ कार्य है जिसको करने के लिए एक अतिमानुषी (Super Human) शक्ति की अद्भुत तेजस्विता की, अदम्य उत्साह की, निरन्तर अभय स्थिति की और बहुमुखी प्रतिभा की आवश्यकता है।

इसमें केवल एक ही विद्या या जीवन के एक ही अंग या पक्ष को जानने की नहीं बल्कि सभी सद्विद्याओं के सार रूपी अमृत की, योग-महायोग-राजयोग के मर्म की, सार्वभौम धर्म की, महान् विधि और विधान की, गंभीर और रमणीक प्रणाली की, व्यक्तित्व के सभी पहलुओं को विकसित करने वाले जीवन-दर्शन की तथा अनेक परिस्थितियों में से पार कराने वाली जीवन-कला की आवश्यकता है। नयी सृष्टि के लिए नया ही ज्ञान अनिवार्य है और नये विधि-विधान ही की ज़रूरत है। कुछेक पुराने मतों के सम्मिश्रण को या उनमें थोड़ी हेरा-फेरी की ज़रूरत नहीं बल्कि जो इन्सान हैवान से भी बदतर बन चुका है, उसे फिर से महान् बनाने वाले ज्ञान रूपी जादू की ज़रूरत है। पुरानी और बिगड़ी हुई चीज़ को नया बना देना मनुष्य की सामर्थ्य से बाहर की बात है। इस कला के ज्ञाता एक परमपिता परमात्मा शिव ही हैं। वो स्वयं जिसकी बुद्धि में आकर विराजमान हों और जिनकी दृष्टि, वाणी और हाथों का प्रयोग करें वही सिद्धहस्त व्यक्ति नयी सृष्टि के कार्य के निमित्त बन सकता है और ये सब कुछ प्रजापिता ब्रह्मा ही के जीवन में उन सभी ने पाया जो कुछ समय तक उनके सम्पर्क में आये और जिन्होंने निष्पक्ष भाव से उनकी गतिविधियों का अवलोकन किया। अन्य किसी की भी जीवन-कहानी में सारे समाज के आमूल परिवर्तन के कार्य की झलक या कलियुग का मूलोच्छेदन करके शुद्ध सतयुग ही के बीजारोपण के दर्शन नहीं होते।

स्पष्टीकरण के लिए कुछ उदाहरण

1. अन्य उपदेशकों ने या तो घर-बार एवं गृहस्थ जीवन को नरकमय मानकर उसे छोड़ दिया और 'संन्यासी', 'उदासी', 'सेंट' (Saint), 'भिक्षु', 'मुनि' कहलाना पसन्द किया या उन्होंने एक पत्नी वाले जीवन का नियम (एक-दार नियम) या सिद्धान्त बताकर आम लोगों के लिए सीमित विकार वाले गृहस्थ की मान्यता दे दी। किसी ने भी काम विकार को घर-गृहस्थ में "पूरी तरह से" निकाल देने का आदेश-उपदेश एवं मार्ग-निर्देश नहीं दिया, न ही यह बताया कि पहले कभी गृहस्थ जीवन योग-बल पर आधारित था; तब भला उनके उपदेश से सतयुग कैसे आ जाता? जबकि उन्होंने गृहस्थियों को "नरक का द्वार बनाने वाले" काम विकार की स्वीकृति दे दी तो वे "स्वर्ग का द्वार" कैसे खोल सकते थे? सतयुग में तो श्रीलक्ष्मी और श्रीनारायण दोनों होते हैं; अतः नारी को 'नरक का द्वार' बताने वाले लोग दैवी प्रवृत्ति अर्थात् पवित्र गृहस्थ वाले सतयुग की पुनर्स्थापना कैसे कर सकते थे? जिनकी आचारण-संहिता में नारी को देखना भी मना था, वे ऐसे समाज की कैसे स्थापना कर सकते थे जिसमें नारी पूज्या हो?

2. जो लोग धन को 'माया' मानकर धन कमाने के साधन-स्वरूप व्यापार, वाणिज्य, कृषि आदि व्यवसाय को छोड़कर जंगल की ओर जाने के सिद्धान्त वाले थे, वे विभिन्न व्यवसायों वाले एक नये समाज की स्थापना के कैसे निमित्त हो सकते थे? व्यवसायों में से आचरणात्मक दोष निकाल देने की बजाय व्यवसायों को ही छोड़ देने से तो समाज अव्यवस्थित, वीरान अथवा छिन्न-भिन्न होता है; उससे (नये) समाज की स्थापना थोड़े ही हो सकती है? व्यवसाय ही नहीं रहेंगे, उत्पादन ही नहीं होगा, जीवन की आवश्यकतायें ही पूरी नहीं होंगी तो समाज की स्थापना कैसे होगी अथवा उसका अस्तित्व कैसे बना रहेगा?

संसार को दुःखों का घर मानकर जिन्होंने पलायनवाद अर्थात् भाग जाने की नीति को अपनाया और जो जंगल में जाकर छिप गये, वे चहल-पहल वाले संसार को सुखमय कैसे बना सकते हैं? यदि किसी ने जंगल से वापस लौटकर बाद में अपने शिष्यों को प्रचारक बनाकर प्रचार कार्य भी किया और कराया तो वह भी कोई ऐसा व्यवहारिक (practical) और सर्वाङ्गीण तो नहीं था कि जिससे सभी प्रकार के लोगों को कुछ प्राप्त हो।

अन्यश्च, जिन्होंने भी कोई भी धर्म स्थापित किया या मत, वाद अथवा सिद्धान्त संसार को दिया, उनके द्वारा दिये हुए धर्म, मत या सिद्धान्त सम्पूर्ण एवं सर्वाङ्गीण तो नहीं थे। उन्होंने कोई पूर्ण वैश्विक दर्शन (World-Vision) या जीवन-दर्शन (Philosophy of Life) तो प्रस्तुत नहीं किया। उदाहरण के तौर पर बुद्ध ने जो विचार-धारणा संसार के सामने रखी, उसमें परमात्मा के बारे में तो कोई न्याय-संगत दर्शन प्रस्तुत नहीं किया बल्कि वे परमात्मा के बारे में मौन रहे और उनके उत्तराधिकारियों ने तो परमात्मा के अस्तित्व को ही नकार दिया। किसी धर्मस्थापक ने आत्मा ही परमात्मा है और जगत् मिथ्या हैह्वह्व ऐसा

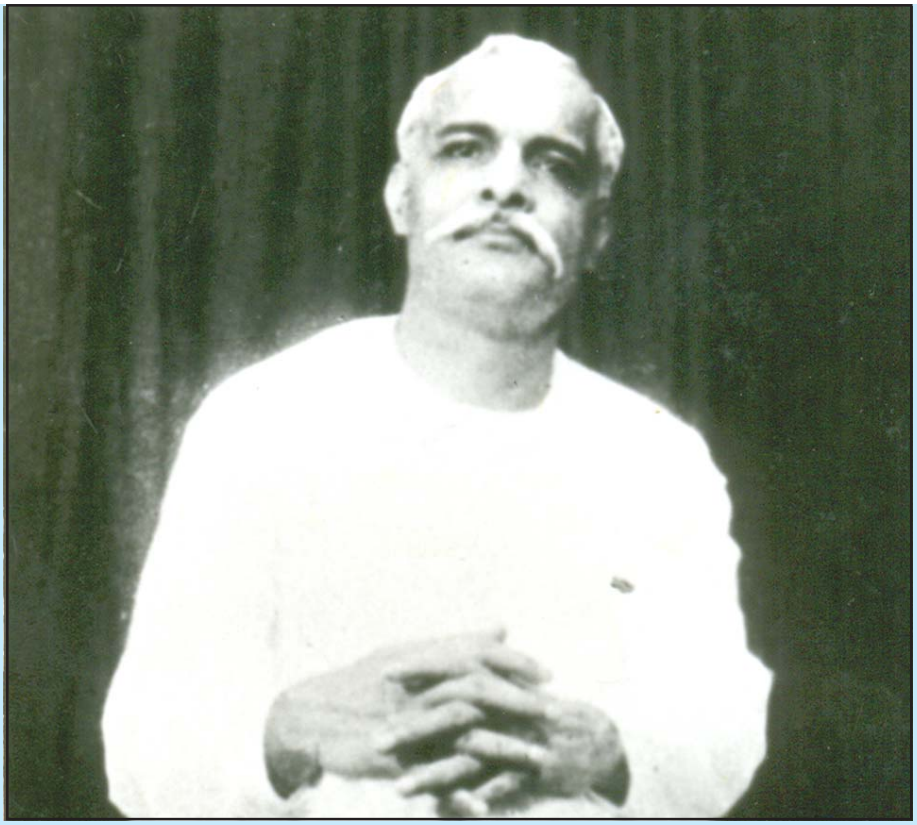

बताकर परमात्मा और जगत के अस्तित्व को ही अस्वीकार किया। इस प्रकार के सिद्धान्त से भले ही किसी को तुष्टि होती हो, इससे नये संसार की रचना तो नहीं होती। जो जगत को मिथ्या मानते हैं वे नये जगत की रचना कैसे करेंगे? जो परमात्मा को ही नहीं मानते वे सत्यता, पवित्रता, आनन्द और आध्यात्मिक शक्ति की सर्वोच्च स्थिति तक ले जाने का मार्ग कैसे प्रशस्त करेंगे? जबकि परमात्मा ही परम सत्य, परम पवित्र, परम आनन्द और सर्वशक्तिमान हैं, तब उसके अस्तित्व को न मानने से, सर्वोच्च योग से जन-मानस को वञ्चित करके, सत्य युग, पवित्र युग अथवा आनन्दपूर्ण समाज की पुनर्स्थापना कैसे की जा सकती है?

प्रजापिता ब्रह्मा द्वारा प्राप्त दर्शन में ये सब हैं। सार-संक्षेप में हम कह सकते हैं कि सृष्टि रूपी कल्पवृक्ष की शाखाओं-प्रशाखाओं को तो स्थापित किया जाता रहा परन्तु इसके मूल में किसी ने नया कलम नहीं लगाया। इससे पहले कोई इस कार्य को कर ही नहीं सकता था क्योंकि जब सारा वृक्ष प्रगट हो जाये तभी उसके मूल को लगाने का कार्य संभव हो सकता है। अति के बाद ही तो अन्त आता है और पुनः आदि होता है। जब सभी मतवाद अपनी निम्नतम अवस्था को पहुँच जायें तभी तो उनके स्थान पर एक श्रेष्ठ दर्शन की आवश्यकता सभी को महसूस होती है। जब सभी धर्मपिता अपना-अपना कार्य कर लें, तभी तो परमपिता का अवतरण हो। जब कलियुग अपनी अन्तिम सीमा तक पहुँच जाये तभी तो सतयुग की पुनर्स्थापना हो। अतः यह कार्य अब ही होना संभव है क्योंकि अब ही अधोपतन की अन्तिम सीमा तक संसार जा पहुँचा है।

बहुमुखी प्रतिभा

अब जबकि अनेकानेक धर्म और मतवाद हैं तथा संप्रदाय और संस्थान हैं, तब सभी को निष्पक्ष भाव से एवं पितृवत् प्यार से परिवर्तित करने की आवश्यकता है। तब ऐसे दर्शन की आवश्यकता है जिसे सभी नया मानने के लिए तैयार हों। तब सभी के सामने ऐसा व्यक्तित्व हो जो सभी को महसूस हो। तब सभी के सम्मुख ऐसी प्रतिभा वाला व्यक्ति हो जिसे सब नमस्कार करें। तब सभी के सामने ऐसा उज्ज्वल और उच्च जीवन हो, जिसे सब अनुकरणीय एवं आदर्श स्वीकार करें। ऐसी ही प्रतिभा थी प्रजापिता ब्रह्मा की। वे अपनी मेधावी बुद्धि तथा अकाट्य तर्क के कारण एक उत्तम दार्शनिक मालूम होते थे। अपने संयम-पालन, आचार-विचार और शिष्टाचार के कारण, वे एक महान् आचार्य भी महसूस होते थे। वे संस्थान चलाने में ऐसे कुशल थे कि एक उच्च कोटि के प्रशासक माने जाते थे। उनके मुख से ऐसे हीरे-मोती निकलते थे कि लोग उन्हें अलौकिक जवाहरी समझते थे। अपनी वेष-भूषा से वे एक तेजस्वी व्यापारी लगते थे। अपनी पवित्रता और तपस्या के फलस्वरूप उनके मुखमंडल पर ऐसा तेज था कि वे एक महान् योगी माने जाते थे। उनके व्यवहार में वह शालीनता थी कि कोई कह सकता था कि इससे पहले वे राजा या महाराजा थे या उनके निकट मित्र थे। वे दानी, महादानी और वरदानी थे और उनमें प्यार तथा अनुशासन का अद्भुत सन्तुलन था। इनका व्यक्तित्व और व्यवहार ऐसा था कि वे सभी के जीवन में नैतिक परिवर्तन लाने वाली कला में कुशल थे और नयी सृष्टि की रचना के लिए परमपिता परमात्मा के माध्यम थे।

ब्रह्मा बाबा -सर्वांगीण मानसिक एकाग्रता के अग्रणी

– भ्राता जगदीश चन्द्र

नयी सहस्राब्दी की बात को लेकर, कई सप्ताह अथवा महीनों तक समाचार पत्र, गत एक हज़ार वर्ष में हुए आदृत सन्तों, प्रसिद्ध राजनीतिज्ञों, प्रतिभाशाली वैज्ञानिकों अथवा तकनीकज्ञों, सफल मिलिट्री कमाण्डरों, मेधावी विचारकों, कुशल प्रशासकों, प्रभावशाली कलाकारों इत्यादि के जीवनवृत्त की संक्षिप्त झलकियाँ छाप रहे थे। इनमें से वे उनको अधिक महत्त्व दे रहे थे जिनके विचारों, अन्वेषणों या कार्यों ने इतिहास को नया मोड़ दिया, संसार को समझने में अधिक स्पष्टीकरण दिया या लाखों-करोड़ों लोगों को प्रभावित किया। चलते-चलते हज़ार वर्षों की बजाय सौ वर्षों में हुए अधिक प्रभावशाली व्यक्तियों का भी उल्लेख होने लगा। इस प्रक्रिया में बहुत-से नामों की तुलनात्मक जानकारी करने का अवसर जन-जन को प्राप्त हुआ।

स्वभावतः हरेक व्यक्ति में अलग-अलग विशेषता पायी गयी। परन्तु इन सभी में एक सांझी विशेषता उनके मन की कोई गुणवत्ता थी। या तो किसी का मनोबल (Will-power) और साहस प्रशंसनीय था, या किसी का चिन्तन बहुत गहन और विचार बहुत गहरे, किसी की अन्तर्दृष्टि (intuition) चमत्कारी थी तो किसी का लोक-कल्याण या समाज सेवा का भाव अतुल था। इन सभी की नींव में भी जो शक्ति छिपी थी, वह थी 'मानसिक एकाग्रता'। मानसिक एकाग्रता से ही ये सभी भाव बढ़े और परिपक्व हुए थे।

यदि उपरोक्त दृष्टि से विचार किया जाये तो प्रजापिता ब्रह्मा इन सभी में से अग्रगणी थे। उनमें मानसिक एकाग्रता

बाबा के साथ मम्मा, निर्मलशान्ता दादी, रुकमणी दादी, गंगे दादी, दादी शान्तामणि जी तथा अन्य।

तथा अन्य मानसिक शक्तियाँ विकसित थीं। उनमें छह प्रकार की सर्वाङ्गीण मानसिक एकाग्रता थी। उन छह प्रकार की एकाग्रता का संक्षिप्त वर्णन करने से पहले हम इसकी चर्चा करेंगे कि व्यक्ति की कार्य-कुशलता में एकाग्रता का क्या महत्त्व अथवा स्थान है।

जीवन में एकाग्रता का महत्त्व

जीवन के प्रायः हर कार्यक्षेत्र में मानसिक एकाग्रता का बहुत महत्त्व है। वैज्ञानिक मन की एकाग्रता के आधार पर ही शोधकार्य (research) तथा अन्वेषण (inventions) करते हैं। चित्रकला, मूर्तिकला, भवन-निर्माण कला तथा अन्य सभी कला-कौशल भी मन की एकाग्रता पर टिके हैं। जो कार्य सामान्य रूप से असंभव प्रतीत होते हैं, वे भी मन की एकाग्रता द्वारा हो जाते हैं। इस्राइल के एक व्यक्ति यूरी गैलर जब मन को एकाग्र करके कहते हैं कि ह्न "बन्द हो जाओ" (stop) या "झुक जाओ" (bend) तो लोगों की जेबों में घड़ियों की सूइयाँ रुक जाती हैं, दूर दीवार पर लगी बड़ी घड़ी बन्द हो जाती है और बटुवे में पड़ी हुई चाबियाँ थोड़ी टेढ़ी हो जाती हैं। बाल्यकाल से अथवा चिरकाल से अथवा पूर्वजन्म ही से एकाग्रता का अभ्यास करते-करते वे मन को पूरी तरह एकाग्र (pin-pointed concentra-tion) करके ऐसा असामान्य कार्य कर लेते हैं। रूस की एक महिला जब मन को एकाग्र करके तराजू के एक पलड़े को झुक जाने का आदेश देती है तो वह झुक जाता है अथवा यदि वह मेज़ पर पड़ी डबलरोटी को आदेश देती है कि वह उसकी ओर आ जाये तो डबलरोटी धीरे-धीरे चलकर उसकी ओर बढ़ती है। ऐसे ही कई प्रकार की सिद्धियाँ

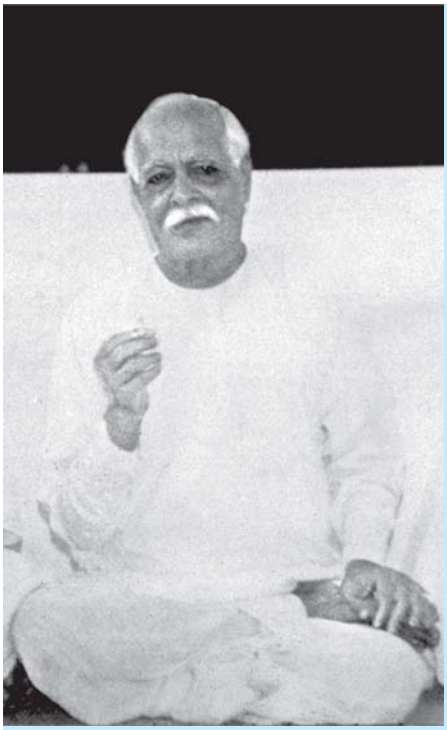

व्यक्ति को मन की एकाग्रता से प्राप्त होती हैं।

भारत में गाँव अथवा उपनगरों में प्रायः एक ऐसे कलाकार (rope dancer) की कला को हम देखते हैं जो दो बाँसों के बीच रस्सी बाँधकर उस रस्सी पर पाँव के बल या सिर के बल चलता है और एक सिरे से दूसरे सिरे तक पहुँच जाता है। वह ऐसा कठिन कार्य भी मन की एकाग्रता तथा सन्तुलन से कर लेता है कि देखने वाले आम लोग दाँतों तले अंगुली दबाकर उसके इस करिश्मे को देखते ही रह जाते हैं।

एकाग्रता द्वारा मुक्ति–जीवनमुक्ति की प्राप्ति

पूर्वोक्त प्रकार की सिद्धियों का जीवन को महान् बनाने के पुरुषार्थ में कोई विशेष लाभ नहीं है। निःसन्देह, मन की एकाग्रता तो एक महान् प्राप्ति है। यदि उसे इन लौकिक करिश्मों में, जिनसे कि यश प्राप्त होता है, लगाने की बजाय किसी योग्य काम में लगाया जाये तो जन्म-जन्मान्तर के लिए अशान्ति तथा सब प्रकार के दुःखों से निवृत्ति हो सकती है। यह सिद्धि मानसिक एकाग्रता को योगाभ्यास में प्रयोग करने से होती है। योगी, मन को इष्ट पर एकाग्र करने का अभ्यास करता है। इस एकाग्रता के लाभ से उसे अन्य कई लाभ, जिनके लिए उसकी कोई तीव्र इच्छा नहीं भी होती, किसी अलग पुरुषार्थ के बिना स्वतः ही हो जाते हैं। परन्तु एकाग्रता द्वारा प्राप्त होने वाली इन सिद्धियों से वह अपने मन के भाव को दूसरे के मन में प्रेषित (transfer) कर सकता है और किसी को कोई आदेश, निर्देश वा सन्देश देना हो तो भी बिजली, तार या किसी वैज्ञानिक यंत्र की सहायता के बिना दे सकता है।

एकाग्रता द्वारा आनन्द–मग्न, प्रेम–विभोर, विकर्म दग्ध

योगाभ्यास में मानसिक एकाग्रता का सबसे बड़ा लाभ तो यह है कि आत्मा, परमात्मा की स्मृति में लवलीन अथवा मग्न होकर एक अत्यन्त उत्तम प्रकार का अनुभव करती है जिसे कोई 'नामखुमारी', अन्य कोई 'मौलाई मस्ती', कोई 'नारायणी नशा' और कोई 'तुर्यावस्था' अथवा योग के 'परमानन्द की स्थिति' का नाम देता है। तब मन मौन हो जाता है तथा प्रकाश और शक्ति (Light and Might) की एक ज्वाला-सी प्रज्वलित हो उठती है जिससे पूर्व जन्मों में किये हुए विकर्म दग्ध होते हैं। योगाभ्यास करने वाले सभी लोग ऐसी मानसिक एकाग्रता प्राप्त करने के लिए आकांक्षा करते हैं। इसीलिए वे जानना चाहते हैं कि यह एकाग्रता कैसे प्राप्त होगी जिसमें मन पूर्ण रूप से ईश्वर-निष्ठ हो जाये, प्रेम-विभोर हो, आनन्द में लहराये और सच्चे अर्थ में सन्तुष्टता का रसास्वादन करे।

मन की छह स्वाभाविक योग्यतायें

इस रहस्य को समझने के लिए हमें यह याद रखना चाहिए कि सामान्यतः मन के छह मुख्य कार्य होते हैं अथवा मन की छह योग्यतायें हैं। मन की एकाग्रता में उन सबकी एकाग्रता समाहित है। मन पूर्ण रूप से तभी एकाग्र होता है जब इन छहों प्रकार की एकाग्रता एक-साथ होगी। यद्यपि इन छहों प्रकार की एकाग्रता के लिए अलग-अलग अभ्यास भी किया जा सकता है तो भी इन सबकी मिली-जुली एकाग्रता से पुरुषार्थी एकाग्रता की चरम सीमा तक पहुँच सकता है। मन की छह क्षमतायें अथवा उसके छह कार्य (functions) निम्नलिखित हैंह्न

1. वैचारिक एकाग्रता अथवा व्यर्थ संकल्पों पर विराम

मन का एक कार्य अथवा उसकी एक योग्यता हैह्न सोचना, विचारना, संकल्प करना, इरादा करना या इच्छा करना। स्पष्ट है कि इस प्रकार की एकाग्रता के लिए हमें संकल्पों की भीड़-भाड़ या बेतहाशा भाग-दौड़ पर नियंत्रण करना होगा। अन्यश्च, हमें अपना गन्तव्य (लक्ष्य) निश्चित करके, अल्प संकल्प होना होगा; हमें ज़्यादा मनसूबों की गठरी को अपने सिर पर नहीं लादना होगा। इसके अतिरिक्त हमें अपनी इच्छाओं को भी मर्यादित करना पड़ेगा और आकांक्षाओं की खींचातानी से छुटकारा पाना होगा। हमें व्यर्थ संकल्प नहीं करने होंगे और अनावश्यक सोच-विचार को विराम देना होगा। इसके लिए हमें कई बार समझाया गया है कि हमें अपने विचारों की व्यर्थता पर काबू पाना होगा और फ़ालतू संकल्पों के बहाव को रोकना होगा। हमें यह भी समझाया गया है कि हम इच्छाओं की गुलामी को छोड़ें

बाबा और दादी बृजेन्द्रा

और श्रेष्ठ तथा न्यूनतम इच्छाओं की शक्तिशाली स्थिति का अनुभव करें। इस प्रकार का अभ्यास ही 'मन के मौन' (silence of mind) का अभ्यास है। हम जितना-जितना इस अभ्यास में सफल होते जायेंगे उतना-उतना हमारी एकाग्रता सहज और स्वतः होती जायेगी। इस प्रकार की मानसिक एकाग्रता को 'वैचारिक एकाग्रता' (Concentration of thoughts) कह सकते हैं। इस अभ्यास में हमें अपने संकल्पों को परमात्मा की ओर दिशा देनी होगी तथा इधर-उधर से संकल्प समेटने होंगे। हमें यह याद रखना चाहिए कि विचारों की एकतानता (एकरूपता) ही एकाग्रता अथवा योग है। अतः हमारे विचारों का बहाव अथवा चिन्तन का टिकाव एक परमात्मा ही की ओर होना चाहिए। बस, हमें एक ही धुन लगी हो।

2. समझ, आस्था अथवा निश्चय की एकाग्रता

मन का दूसरा कार्य अथवा मन की दूसरी योग्यता हैह्लह्ल निश्चय करना, मानना, एतबार करना, विश्वास करना अथवा ठान लेना। मनुष्य संसार में अनेकानेक प्रकार के मत-मतान्तरों को सुनता है। यदि वह इनमें से काट-छाँट कर किसी एक में विश्वास न करे या सोच-समझकर किसी एक बात के निश्चय में स्थिर न रहे तो वो बेपेंदे के लोटे की तरह लुढ़कता रहेगा, असमंजस या उलझन (confusion) में पड़ा रहेगा, संशय के भँवर में फँसा रहेगा या डाँवाँडोल अवस्था में लड़खड़ाता रहेगा। एक बार सोच-समझकर निश्चय कर के उसमें स्थिर रहना मानसिक एकाग्रता के लिए सहायक होता है और दूसरों का मुँह ताकते रहना, हरेक की बात में बह जाना, मन को एकाग्र नहीं होने देता। याद रहे कि **आस्था की स्थिरता ही एकाग्रता की जननी है** और निश्चय में हलचल ही एकाग्रता में भूकम्प है। इसलिए, "मैं कौन हूँ, कहाँ से आया हूँ, मुझे कहाँ जाना है, यह जीवन क्या है, मेरा लक्ष्य क्या है, मुझे करना क्या है और क्या नहीं करना है, यह संसार क्या है, इसका रचयिता कौन है, वर्तमान समय क्या है, इस समय की क्या विशेषता है, आने वाला समय कैसा होगा, उसके लिए मुझे तैयारी क्या करनी है?..." इन आवश्यक प्रश्नों पर पूरी समझ (understanding) प्राप्त करके व्यक्ति को उसके निश्चय में स्थिर होना चाहिए। यह स्थिरता एकाग्रता का एक भाग है। श्रीमद्भगवद् गीता में भी 'निश्चयात्मा' और 'संशयात्मा' का वर्णन है।

3. दृष्टि की स्थिरता

मन की एक अन्य योग्यता अथवा उसकी एक अन्य स्वाभाविक क्षमता हैह्लह्ल देखना। हमारे चर्मचक्षु तो बाह्य वस्तुओं को देखने का साधन मात्र हैं, द्रष्टा तो वास्तव में मन है। इसे कई लोग 'भीतर का चक्षु', 'मन की आँख', 'अन्तर्दृष्टि' इत्यादि नाम देते हैं। स्थूल आँखें तो अति सूक्ष्म चीज़ों को तथा आध्यात्मिक सत्ता को देख भी नहीं सकतीं। स्थूल आँखों से भी देखने का प्रयोजन तभी सिद्ध होता है जब मन की आँख स्थूल नेत्रों के साथ जुटी हो अर्थात् वह भी देख रही हो। चंचल स्वभाव वाले व्यक्ति का मन क्षण-क्षण में इधर-उधर की चीज़ों या व्यक्तियों के चित्र देखता रहता है। योगी का ज्ञान-चक्षु परमात्मा ही पर टिका रहता है। उसकी दृष्टि परमधाम में परमपिता शिव ही पर होती है। उसका ध्यान वहीं जमा रहता है। अन्य वस्तुओं तथा व्यक्तियों को देखते हुए भी बार-बार उसका मन अपने प्रियतम को देखता रहता है। पतञ्जलीकृत 'योग दर्शन' में भी 'ध्यान' को महत्त्वपूर्ण स्थान दिया गया है। ध्यान की यह क्रिया भी मानसिक एकाग्रता को लाती है। अतः देहधारियों और स्थूल वस्तुओं की ओर ध्यान होने की बजाय एक अव्यक्त परमात्मा पर ही दृष्टि टिकी हो तो यौगिक एकाग्रता होने लगेगी।

4. अवधान

हम देखते हैं कि जीवन में जो अनुभव होते हैं, वे सभी एकाग्रता अथवा

अवधान (focussed attention) से होते हैं। यदि किसी बात की ओर ध्यान (attention) न हो तो उसका अनुभव नहीं होता। यदि मनुष्य का ध्यान केन्द्रीभूत न होकर बिखरा हुआ हो अर्थात् वह कभी किसी एक बात की ओर और दूसरे समय में दूसरी ओर हो तो इस चंचलता के परिणामस्वरूप उसका अनुभव परिपक्व नहीं होता। ठीक इसी प्रकार, योगाभ्यास करते समय यदि मनुष्य का मन चंचल हो तो उसे ईश्वरानुभूति नहीं होती। उसमें प्रकाश और शक्ति की तरंगें नहीं आतीं। किताब पढ़ते समय जिन लोगों का अवधान पुस्तक की विषय-वस्तु पर न होकर इधर-उधर होता है तो वे कुछ भी ग्रहण नहीं कर सकते। अवधान का होना ज़रूरी है। सूर्य की किरणों का यदि लेन्स (Lense) के द्वारा केन्द्रीकरण किया जाये तो एकाग्रता वाले स्थान पर अग्नि प्रकट हो जाती है। इसी प्रकार, लेज़र (Laser) द्वारा केन्द्रीभूत किरणें भी शक्तिशाली हो जाती हैं। अवधान ऐसी क्रिया है जिसमें एक पर ही ध्यान केन्द्रित किया जाता है। इसका अभ्यास करने से एकाग्रता का लाभ होता है।

पतञ्जली के राजयोग दर्शन में भी 'धारणा' को महत्त्व दिया गया है। 'धारणा' में अवधान समाया हुआ है। अतः अवधान का विशेष महत्त्व माना गया है। इसका अभ्यास करने से व्यक्ति न केवल शान्ति और शक्ति को प्राप्त करता है बल्कि उसमें बहुत-सी अन्य सिद्धियाँ भी आती हैं। मन का यह स्वभाव है अथवा उसमें यह योग्यता है कि वो कुछ-न-कुछ समय के लिए कहीं पर एकाग्र होता है। उसकी इस क्षमता को धीरे-धीरे ईश्वरीय स्मृति में स्थित करना ही एकाग्रता को प्राप्त करना है। ईश्वरीय स्मृति में स्थिति न केवल एक बहुत बड़ी उपलब्धि है बल्कि यह ऐसी सिद्धि है जिसके साथ अन्य कई सिद्धियाँ भी स्वतः ही व्यक्ति को मिलती हैं।

5. सम्बन्धों की एकता भी एकाग्रता में सहायक

मन की यह भी विशेषता है कि व्यक्ति जब भी कभी किसी को मिलता या देखता है तो उसका मन उसके साथ अपने सम्बन्ध को भी जानने का यत्न करता है अथवा उसके साथ जो सम्बन्ध उसे ज्ञात होता है उस सम्बन्ध के अनुसार ही वह व्यवहार करता है। गोया मनुष्य का मन नाते को ध्यान में रखते हुए ही सोचता है। योगी, मन के स्वभाव अथवा उसकी क्षमता का प्रयोग करते हुए आत्मा के सभी सम्बन्ध परमात्मा से जोड़ता है। इसे ही 'योग' कहते हैं। दूसरे शब्दों में, सम्बन्ध जोड़ने को योग कहा जाता है। यदि मनुष्य का मन अधिक सम्बन्धों अथवा सम्बन्धियों को याद करता है तो वो एकाग्र नहीं होता। मनुष्य को जितने-जितने कम सम्बन्धों की याद होती है, उतनी-उतनी उसकी एकाग्रता बढ़ती है। इसलिए जब योगाभ्यासी परमात्मा को याद करता है तो वह देह के अनेक प्रकार के सम्बन्धों को याद करने की बजाय परमात्मा के साथ आत्मा के सर्व सम्बन्धों की याद में स्थित होता है। एकाग्रता के लिए परमात्मा को माता, पिता, सखा, स्वामी, शिक्षक, सद्गुरु इत्यादि सब सम्बन्धों से याद करना ही 'योग' है। प्रायः सभी धर्मों में परमात्मा को 'मात-पिता' कहा गया है और भक्तिमार्ग में भी ''त्वमेव माताश्च पिता त्वमेव... त्वमेव सर्व मम देवदेव'' कहा गया है। उस एक से सर्व सम्बन्ध जोड़ने से ही पूर्ण एकाग्रता होती है। याद रहे कि सभी दैहिक सम्बन्धों को भूल एक ज्योति स्वरूप की याद में स्थित होना ही ईश्वर में एकाग्रता का साधन है।

6. आवेगों की एकाग्रता

मन का एक स्वभाव अथवा उसकी एक क्षमता है आवेगों (emotions) की उत्पत्ति करना। मन प्रेम, घृणा, शान्ति, क्रोध इत्यादि भावों अथवा आवेगों का अनुभव करता रहता है। इसके अनुसार यदि व्यक्ति का मन परमात्मा के प्रति भाव-विभोर हो उठे, प्रेम-प्लावित हो, उसमें परमात्मा के प्रति उद्गार ज़ोरदार हों तो एकाग्रता उसके लिए सहज हो जाती है। इसलिए कहा गया है कि ''लगन में मगन होना ही योग है'' अथवा ''परमात्मा से प्रेम का नाता जोड़ना ही योग है।'' प्रेम से स्वतः ही मन मगन हो जाता है। उसमें कोई कृत्रिम साधन नहीं अपनाने पड़ते।

उपरोक्त छह प्रकार का अभ्यास करने से मानसिक एकाग्रता का लाभ हो सकता है।

पूर्वोक्त छह प्रकार की मानसिक एकाग्रता का जो उल्लेख हमने किया है, प्रजापिता ब्रह्मा उन सभी के धनी थे। इसलिए उनकी जीवन-पद्धति ने लाखों व्यक्तियों के जीवन को मोड़ दिया तथा उनके चिन्तन ने हरेक विषय (subject) को कुछ ऐसे नये विचार दिये जो क्रान्तिकारी हैं। परन्तु उनकी ओर अभी बहुत लोगों का ध्यान नहीं गया क्योंकि वे एकान्त में थोड़े लोगों के बीच ही काम करते रहे।

ब्रह्मा बाबा, सृष्टि के सर्वोत्तम मानव

– भ्राता जगदीश चन्द्र

साकार बाबा के साथ जीवन की जो घड़ियाँ बीतीं, वे सभी स्मरणीय हैं क्योंकि स्मृति-पटल पर उनका पुनः उभर आना ऐसा प्रतीत होता है जैसे कोई रंग-बिरंगे प्रकाश का झरना मन को मुग्ध कर लेता है। उनसे जीवन में एक नयी ताज़गी आती है, एक नया सन्देश मिलता है और मन उन सुनहरी यादगारों को देखकर अथवा संस्मृतियों के पन्नों को पलटकर हर बार नयी ख़ुशी महसूस करता है। उन्हीं पन्नों को जल्दी-जल्दी पलटते हुए जो चित्र भीतर के नेत्र के सामने आते-जाते हैं, उनमें से कुछ का चित्रण करने का प्रयास कर रहा हूँ।

मुझ पर ऐसी कृपा–दृष्टि बरसायी कि मैं अपने स्थान पर टिक नहीं पाया

बात सन् 1953 की है। तब मैं पहली बार मधुबन गया था। उन दिनों इस ईश्वरीय विश्व विद्यालय का मुख्यालय वर्तमान स्थान पर न होकर बृजकोठी में था। मन की कुछ विचित्र स्थिति साथ लेकर गया था। ब्रह्मा बाबा कैसे होंगे, उनका हाव-भाव, बैठना-उठना, बातचीत किस प्रकार की होगी, वह तो सृष्टि के पितामह हैं और सर्वोत्तम मानव हैं, उनका सब कार्य-कलाप तो निराला ही होगाह्वह्व यह सब देख पाने की उत्सुकता मन में हिलोरें ले रही थी। वहाँ जाने से पहले मैंने कल्पवृक्ष के मूल पर उनका चित्र तो देखा ही था और लाल अक्षरों में उनके कई पत्र भी पहले पा चुका था परन्तु अभी साक्षात् उनके सामने बैठने का सौभाग्य मुझे नहीं प्राप्त हुआ था। आख़िर रेल और बस द्वारा यात्रा पूरी हुई और हम मधुबन पहुँचकर नहा-धोकर, उत्सुकता को मन में बटोरे हुए पिताश्री से मिलने, उनके माध्यम से शिव बाबा से मिलने की तिरोहित इच्छा को लिये हुए उनके सामने जाकर बैठ गये। सच कहता हूँ, इन नैनों ने ऐसी छवि कभी नहीं देखी। बाबा के चेहरे पर अनेक राज़ों से युक्त परन्तु स्वाभाविक और वात्सल्यपूर्ण कुछ हल्की, कुछ गहरी रेखायें उभर आयी थीं। परन्तु ऐसा याद आता है कि शायद एक मिनट ही अभी मुझे वहाँ बैठे हुए हुआ होगा कि बाबा ने मुझे निहारते हुए मुझ पर ऐसी कृपा-दृष्टि बरसायी कि मैं अपने स्थान पर टिक नहीं पाया बल्कि जैसे कोई सूई बरबस ही एक शक्तिशाली चुम्बक की ओर स्वतः खिंची हुई-सी चली जाती है, वैसे ही मैं भी पंखों के बिना ही उड़ान

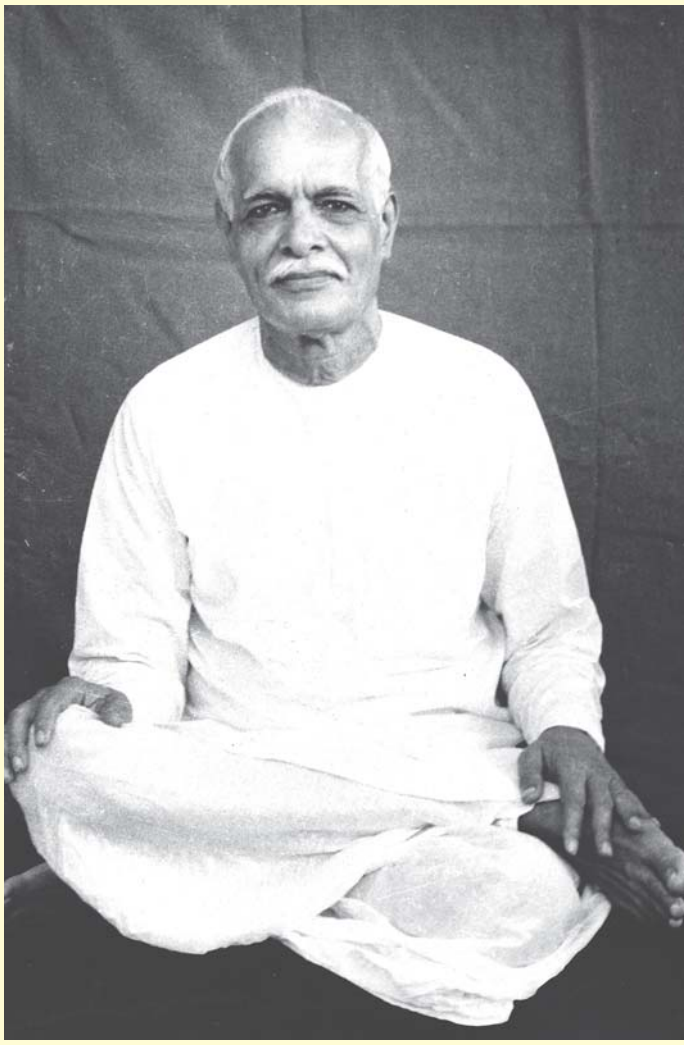

भरकर उनकी गोद में जा समाया था। परन्तु मुझे इतना भी आभास नहीं हुआ कि मैं वहाँ से उठकर उनकी गोद में गया बल्कि यह चेतना तो मुझे बाद ही में आयी कि मैं उनकी गोद में हूँ। उससे पहले के क्षणों में जब मैं बाबा की गोद में था, तब न तो मुझे अपनी देह का रंच भी भान था, न मुझे साकार माध्यम के स्पर्श का बोध था, न पास ही में बैठी हुई माताश्री तथा बहनों का कुछ एहसास था, न मुझे यह ज्ञान ही रहा था कि मैं इस भौतिक लोक में हूँ। जैसे कोई बिछुड़ी हुई आत्मा पारमार्थिक प्यार की एक कसक के साथ अपने प्रियतम से मिलने की अनुभूति में डूबी हुई होह्वह्व एक ऐसी ही चेतना का आत्मा में संचार हुआ। ढूँढ़ने से शब्द नहीं मिलते कि इसका वर्णन कर सकूँ। पूर्ण प्रत्याहार की अवस्था थी। प्रकृतित्व कुछ क्षणों के लिए बिल्कुल मिट-सा गया था। आत्मा और परमात्मा के बीच अन्य कोई

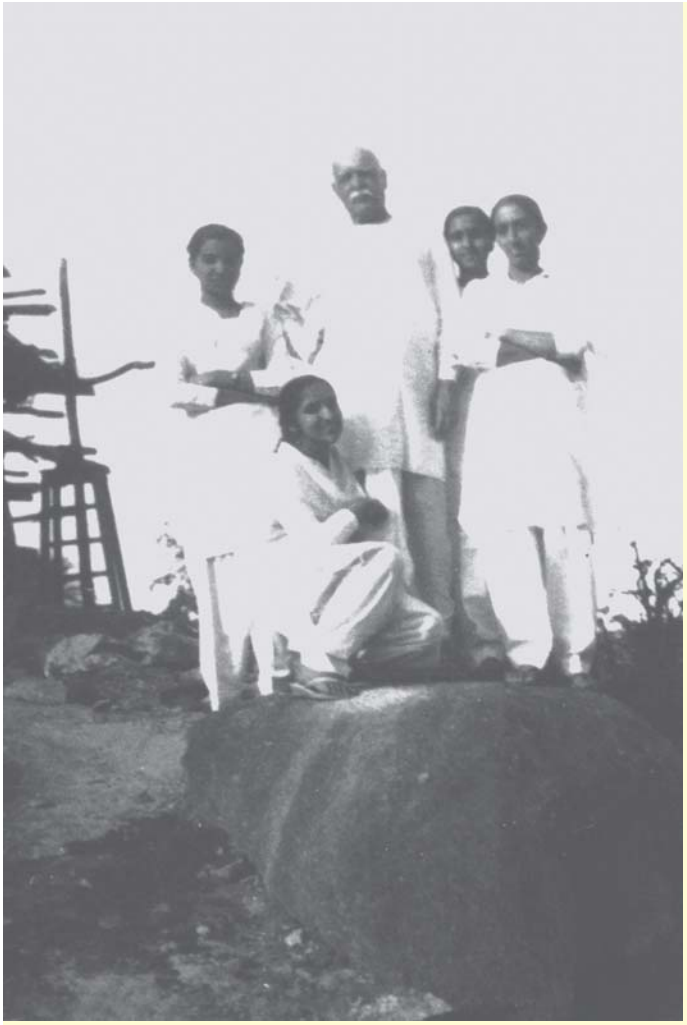

रेखा और रंच कुछ न था। एक अपूर्व अनुभव था जिसकी लालसा सदा बनी रहती है। उस ज्योतिस्वरूप परमात्मा के ब्रह्मतत्व (जो कि परमधाम में होता है) का भी भान नहीं था। मानो शिव बाबा और मेरे बीच का फ़ासला भी समाप्त हो चुका था। काल भी वहाँ अनुपस्थित था। फिर अनायास ही कुछ ऐसे शब्द सुनायी पड़ेह्न ''बच्चे, बच्चे, ओ मीठे बच्चेह्न! अब तो बाप के पास आ गये हो, अब तो आ मिले होह्न!'' ऐसा लगता था कि ये शब्द मेरे भीतर के कान सुन रहे हैं यद्यपि ये शब्द साकार बाबा के माध्यम से उच्चारे गये थे। (ऐसा मुझे बाद में बताया गया)। अब धीरे-धीरे मुझे महसूस हुआ कि मैं उस पिता की शीतल गोद में हूँ और लगा कि जिस चीज़ की मुझे इस जीवन के बचपन से ही तलाश थी, जिससे मिलने के लिए मेरे मन में जन्म-जन्मान्तर से आशा थी, आज मेरा उससे मिलन हुआ है।

सहृदयता, आत्मीयता और वात्सल्य की निधि

थोड़े ही समय में, जब मेरे साथ ही आये हुए अन्य लोगों से भी बाबा मिल चुके तो वे अपने आसन से उठे और मेरी अंगुली को अपने समर्थ हाथों में थामकर, जैसे एक पिता अपने छोटे बच्चे को कहीं ले जाता है, मुझे यज्ञ-समाचार सुनाते हुए सीढ़ियों से नीचे उतरने लगे और एक-एक उपस्थित ब्रह्माकुमारी बहन का परिचय भी देते रहे और साथ-साथ उन्होंने मुझे सारा घर, यहाँ तक कि स्टॉक के बन्द कमरे को भी खुलवाकर दिखा दिया जैसे कि चिरकाल के बाद आये किसी बच्चे को बाप अपने घर का सारा समाचार निस्संकोच होकर सुना देता है। और तो क्या, बाबा ने मुस्कराते हुए एक बात और भी इन शब्दों में बता दीह्न ''बच्चे, इस आवास स्थान के पीछे ही श्मशान है और वहाँ एक साधु ने कुटिया बना रखी है और वह रात-दिन ऊँचे-ऊँचे स्वर से बाबा पर गाली रूपी पुष्पों की वर्षा करता रहता है।'' पहले ही दिन, प्रथम मुलाक़ात में इतनी निकटता का आभास बाबा ने मुझे करवाया था। सभी जानते हैं कि तब न तो मैं आयु में बड़ा था, न ही मेरा कोई ऊँचा सांसारिक पद था, न ही किसी भी अन्य दृष्टिकोण से मैं कोई विशेष व्यक्ति था। तो भी बाबा ने इतने स्नेह से और इतने खुले दिल से जो मुझे सारा समाचार सुनाया और जिस प्रकार मैंने उनमें सहृदयता, आत्मीयता तथा वात्सल्य पाया उसने सदा के लिए मेरे हृदय को जीत लिया। विशेष बात यह कि उन द्वारा मुझे शिव बाबा से मिलन का जो अनुभव हुआ था, वह तो एक ऐसा अविस्मरणीय वृत्तान्त था जिसकी गणना मैं जीवन के सर्वोत्कृष्ट क्षणों में भी विशेष किया करूँगा।

'नष्टोमोहः स्मृतिर्लब्धा' बनने का प्रमाण

पहली बार जब मैं मधुबन गया तब मुझे कितनी ही विचित्रतायें देखने को मिलीं। यज्ञ-वत्सों में कितने ही वत्स ऐसे भी थे जिनकी लौकिक माता या मासी भी प्रभु-समर्पित थीं तथा अन्य कई सम्बन्धी भी समर्पित वत्सों में ही सम्मिलित थे। परन्तु वे सभी स्वाभाविक रूप से एक-दूसरे को 'बहन' शब्द से संबोधित करते थे। ज्ञान प्रवेश से पहले के जीवन के सम्बन्ध का भान उनके वर्तमान जीवन और कार्य-व्यवहार में रंच भी देखने को नहीं मिलता था इसलिए मुझे यह देखकर प्रसन्नतायुक्त आश्चर्य हुआ कि मातेश्वरी जी की लौकिक माता उनके लिए 'मम्मा' शब्द का प्रयोग करती थीं और पिताश्री जी की लौकिक धर्मपत्नी उन्हें 'बाबा' कहती थीं और भ्राता विश्वकिशोर को उनकी धर्मपत्नी 'भाऊ' (बड़ा भाई) कहती थीं। मातेश्वरी जी और पिताश्री जी से भिन्न-भिन्न घरों और परिवारों से आये हुए सभी यज्ञ-वत्सों का अलौकिक माँ और बाप ही के सम्बन्ध का ऐसा पक्का नाता था जैसे शारीरिक जन्म लेने वाले बच्चों का अपने लौकिक माँ-बाप के साथ होता है। नहीं, नहीं, वह उससे भी लाख गुणा अधिक पैतृक स्नेह से युक्त नाता था। यह सर्व-विदित है कि महात्मा गाँधी जी ने अपने जीवन में अपनी लौकिक धर्मपत्नी को 'माँ' मान लिया था और ऐसा ही दृष्टिकोण स्वामी रामकृष्ण परमहंस जी ने भी

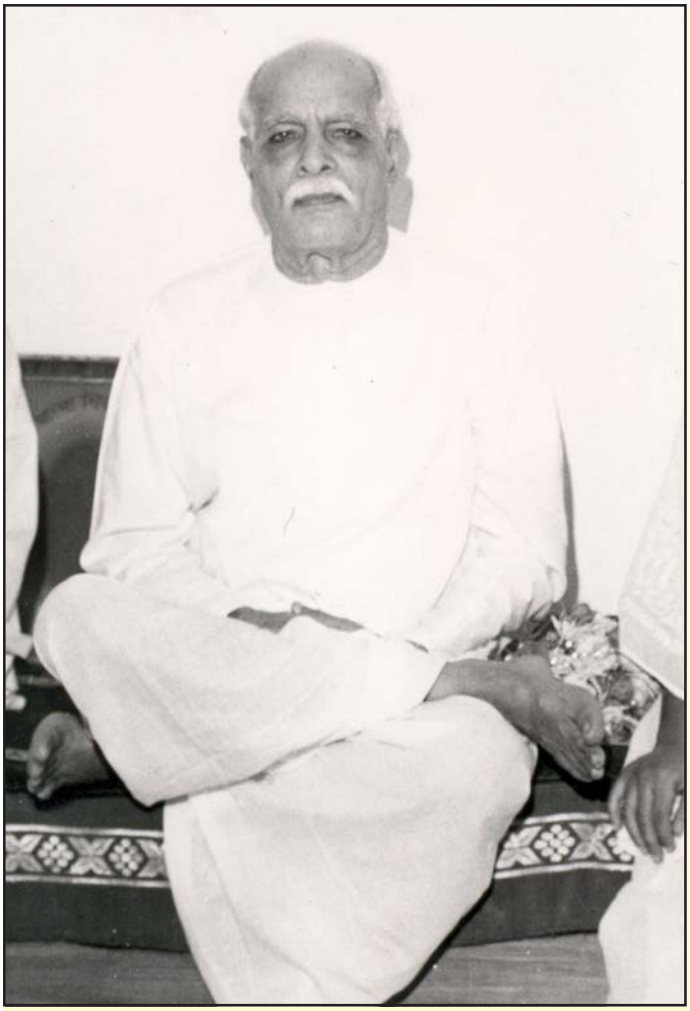

अपनी पत्नी के प्रति प्रारम्भ से ही अपनाया था परन्तु यहाँ तो हरेक यज्ञ-वत्स में यही धारणा थी। संसार के कुछ देहाभिमानी लोगों के लिए यह बात आलोच्य हो सकती है परन्तु मेरे लिए तो यह इस बात का साक्ष्य था कि वे यज्ञ-वत्स दैहिक सम्बन्धों से एवं मोह-ममता से ऊँच उठकर सबको आत्मा के नाते से देखते हुए अथवा सबके साथ अलौकिक ही सम्बन्ध मानते हुए योगमार्ग के दृढ़-प्रतिज्ञ व्यक्ति थे। बाबा के द्वारा गीता-ज्ञान प्राप्त कर यह उनके 'नष्टोमोहः स्मृतिर्लब्धा' बनने का प्रमाण था। यह उनकी 'विदेह अवस्था' की ओर उन्मुख होने का सूचक था और इस विषय में उन सभी के सामने आदर्श थे पिताश्री और माताश्री।

सायुज्य, सामिप्य और सारूप्य

शिव बाबा की प्रवेशता के बाद तो बाबा के चरित्र ऐसे अलौकिक दिखायी देते थे कि यह कहना भी मुश्किल मालूम होता था कि कौन-से कार्य शिव बाबा के थे और कौन-से ब्रह्मा बाबा के। धार्मिक ग्रंथों में, विशेषकर शैव ग्रंथों में सायुज्य, सामिप्य और सारूप्यह्न इन तीन शब्दों का विषद वर्णन मिलता है। आगमों में तीन प्रकार की मुक्ति के वर्णन में इन तीन शब्दों का विशेष रूप से प्रयोग किया जाता है परन्तु साकार बाबा के जीवन पर एक नये अर्थ में ये तीनों ही विशेषण चरितार्थ होते थे और उनकी अव्यक्त अवस्था पर तो ये और ही ज़्यादा सार्थक रूप में अनुभव किये जाते हैं। ब्रह्मा बाबा का शिव बाबा से अनन्यतम योग था। दोनों में ऐसा 'सायुज्य' था कि मानो एक-दूसरे की राय के बिना अथवा एक-दूसरे से अलग होकर वे कोई कार्य करते ही नहीं थे। उनमें 'सामिप्य' भी इतना था कि वे दो न होकर एक ही मालूम होते थे। मन से, बुद्धि से, गुणों से वे एक-दूसरे के ऐसे निकट जुटे थे कि जुड़वाँ से भी ज़्यादा। उनके कर्त्तव्य भी एकरूप से ही हो गये थे और ब्रह्मा बाबा का साकार रूप ही तो शिव बाबा का भी साकार रूप था और ब्रह्मा बाबा की शब्दावली भी तो एकरूप ही लेती गयी थी। जैसे दमयन्ती के स्वयंवर के बारे में प्रसिद्ध है कि वहाँ राजा नल के अतिरिक्त देवता भी नल से मिलता-जुलता रूप धारण कर पधारे हुए थे परन्तु उनमें केवल अन्तर इतना ही था कि देवताओं के रूप की परछाई नहीं थी और राजा नल की परछाई थीह्न इस संकेत से ही दमयन्ती ने राजा नल को पहचान लिया था। वैसे ही उपर्युक्त प्रसंग में भी शिव बाबा और ब्रह्मा बाबा में भी गुण, कर्म, स्वभाव में 'सारूप्य' होता जा रहा था। ऐसा सारूप्य होता जा रहा था कि दोनों में भेद करने का यत्न करना असफलता के द्वार में प्रवेश करने के तुल्य था। इन तीन विशेषताओं के कारण ही तो आज भी अव्यक्त बाप-दादा का सम्मिलित रूप से कार्य चल रहा है।

भक्तिकाल में ही भगीरथ पुरुषार्थ

देखा जाय तो साकार बाबा अपने भक्तिकाल में ही भगीरथ पुरुषार्थ में लग गये थे, तभी तो वे शिव बाबा के भाग्यशाली रथ बने और ज्ञान-गंगा को उतारने के निमित्त बने। कुछ वर्ष पूर्व बाबा के अपने ही हाथों से लिखी जो एक कॉपी मिली थी, उससे यह स्पष्ट विदित होता था कि शिव बाबा की प्रवेशता से पहले उनकी मानसिक भूमिका कैसी थी। नमूने के तौर पर यदि एक पन्ने को लिया जाये तो उस पर कुछ इस प्रकार से लिखा था किह्न "रे मन मंत्री, आज मैंने तुमसे बात करनी हैह्न! जब मैं आत्मा ही राजा हूँ तब तू मुझ आत्मा की आज्ञानुसार क्यों नहीं चलता...ह्न?" इस प्रकार, अन्तर्मुखी होकर अपने को सुधारने और संवारने की ही प्रबल चेष्टा उनमें स्पष्ट दीख पड़ती है।

निराले बाबा

– भ्राता जगदीश चन्द्र

हमारे इस जीवन के साथ बाबा की यादें अटूट रीति से जुट गयी हैं। उन यादों में अनेकानेक वृत्तान्त एक चलचित्र की तरह मानस चक्षु के सामने से गुज़र जाते हैं। वे सभी चित्र जीवन पर एक विशेष प्रभाव छोड़ जाते हैं। उनमें से कुछेक यादें जो सम्प्रति मन में उभर आयी हैं, यहाँ शब्द-चित्रों में प्रस्तुत करने का यत्न करेंगेह्न:ह्न

नेष्ठी नेत्र और देहातीत बनाने वाली शक्तिशाली दृष्टि

मधुबन में बाबा के सम्मुख अनेक बहन-भाइयों को बैठने का सौभाग्य प्राप्त हुआ ही है और सभी के अनुभव भी सुनने योग्य हैं। बाबा के सम्मुख बैठने का सौभाग्य लेखक को भी बहुत बार प्राप्त हुआ। हर बार के अनुभव की एक अनोखी ही दास्तान और एक निराली ही कहानी है। सन् 1955-1956 में मधुबन में थोड़े ही से बहन-भाई होते थे। तब मधुबन में भोग के समय भी हम थोड़े-से ही लोग मातेश्वरी और पिताश्री जी के सामने बैठे होते थे। तब हम बाबा से दृष्टि लेने पर जो अनुभव करते, उस निराले अनुभव का स्मरण करके आज भी रोम-रोम में एक बिजली की लहर-सी दौड़ती हुई मालूम होती है। दृष्टि लेते हुए तुरन्त ही ऐसे लगता कि यह आत्मा उड़ते-उड़ते शिव बाबा के निकट जाकर पहुँची है। अपलक नेत्रों से आँसू बहने लगते परन्तु मन को ऐसा सुख अनुभव होता कि आँखें पोंछने अथवा आँखों को झपकने की सुध ही नहीं रहती और यदि कहीं ऐसा भान आ भी जाता तो भी अव्यक्त यात्रा के अनुभव से नीचे उतरने को मन तैयार न होता। इस ईश्वरीय विश्व विद्यालय के सम्पर्क में आने से पहले हमने ग्रंथों में नेष्ठी-नेत्रों की बात पढ़ तो रखी थी परन्तु नेष्ठी-नेत्रों का साक्षात्कार तो बाबा के सामने बैठने से ही हो पाया। बाबा के नेत्रों की ओर देखने से अपने शरीर को भुलाने के लिए कुछ भी पुरुषार्थ न करना पड़ता और ऐसा लगता कि प्रकाश की गति से भी तेज, आत्मा अशरीरी होकर कहीं दूर-दूर आकाश से उस पार, ज्योति के देश में जाती जा रही है। यह अनुभव जितना ही सूक्ष्म होता था, उतना ही गहरा और बाद में भी आत्मा की स्थिति को अव्यक्त बनाये रखता था। इससे स्पष्ट ही यह समझा जा सकता है कि बाबा की योग-स्थिति कितनी परिपक्व, शक्तिशाली एवं गहन रही होगी और वे स्वयं कितने देहातीत एवं अव्यक्त अवस्था में रहते

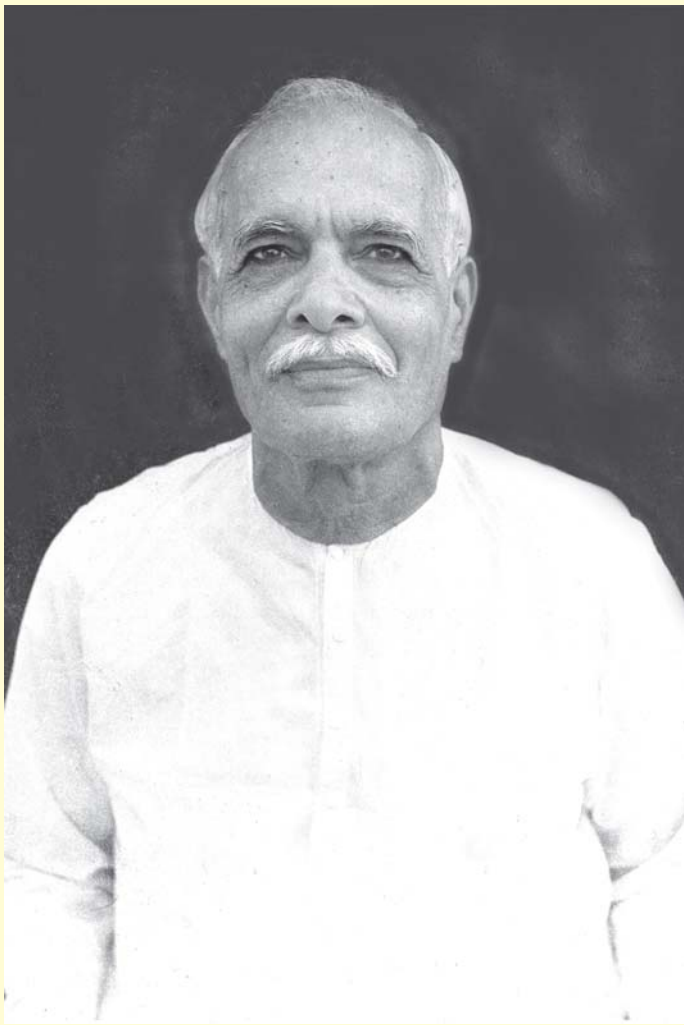

होंगेह्न!

शिव बाबा से अनन्य प्रीति

हम भोग की बात कह रहे थे। जिस प्रातः को भोग लगना होता, उससे पहले की रात्रि को विश्राम करने से पूर्व बाबा सन्देशी को बुलाते और कहतेह्न **"बाबा को दिल व जान, सिक व प्रेम से निमंत्रण देना और कहना कि कल भोग स्वीकार करें।" जिस समय बाबा ऐसा कह रहे होते, उस समय बाबा के नेत्र, बाबा का मुख-मण्डल और उनके हाव-भाव देखते ही बनते।** बाबा केवल औपचारिकता के नाते से 'दिल व जान, सिक व प्रेम, आदि शब्दों का प्रयोग न कर रहे होते बल्कि इन्हीं भावों का स्वरूप होकर शिव बाबा की ओर आँखें करते हुए पूरे हृदय से कहते। बाबा जब यह सन्देश दे रहे होते तो कई बार जब यह लेखक भी वहाँ मौजूद होता तो

उसका भी मन करने लगता कि सन्देशी मेरी भी याद बाबा को दे दे। तब बाबा मन के भावों को जानकर सन्देशी को कहतेह्न ''बाबा को कहना, जगदीश बच्चा भी बहुत-बहुत याद दे रहा था।'' ऐसा कहकर वे मुस्कराते हुए प्रेमभरी आँखों से हमारी ओर देख लेते और बाबा हमें अपनी बाँहों में ले लेते। फिर जब हम बाबा की ओर देखते तब भी हम यही पाते कि हमें स्नेह का स्पर्श देते हुए भी बाबा स्वयं शिव बाबा ही की याद में है क्योंकि उनके मुखारविन्द से ये शब्द प्रवाहित होतेह्न ''बच्चे, तुम बाबा को ज़्यादा याद करते हो या बाबा तुम्हें ज़्यादा करते हैंह्न? देखो बच्चे, बाबा कितना मीठा हैह्न! उसे याद करते ही कितना ख़ुशी का पारा चढ़ जाता हैह्न!! ऐसे बाबा को भला भुलाया जा सकता है...ह्न?''

फिर जब भोग लगता तब भी कभी बाबा कहतेह्न ''देखो तो, यह संगम का समय कितना सुहावना हैह्न! डायरेक्ट शिव बाबा के यज्ञ से यह भोग प्राप्त करने वाले आप बच्चे कितने सौभाग्यशाली होह्न! भले ही देवताओं को सब पदार्थ प्राप्त होंगे परन्तु शिव बाबा का यह भोग तो उन्हें भी नसीब नहीं होगा। ओहो बच्चे, कोई सोचे तो उसके कपाट खुल जायें। शिव बाबा का यज्ञ-प्रसाद अथवा भोगह्न!ह्न! बाबा के साथ भोजन करने का अवसरह्न!!! यह कोई कम बात थोड़े ही हैह्न?''

बाबा की एक-एक बात से ऐसा लगता कि शिव बाबा से उनका इतना घनिष्ठ प्यार है, उनके आत्मन् में शिव बाबा की प्रीति ऐसे तो रम गयी है कि वो उनके हर बोल एवं हर कर्त्तव्य में स्वाभाविक रूप से झर-झर होकर प्रवाहित होती है और दूसरों को भी उसके रौ (प्रवाह) में बहा देती है। उस रौ में कभी बाबा कहते ''मैं उसकी सजनी हूँ।'' फिर कभी ये (शिव बाबा) भी कहते कि वो मेरी वह्नि है। कभी वे कहतेह्न ''मैं उसका मुरब्बी बच्चा हूँ। शिव बाबा मुझसे बहुत प्यार करता है।'' जब वे ऐसा कह रहे होते तब उनकी मुख-मुद्रा और उनके नैन-बैन देखने वाले होते। अपना अनुभव सुनाते हुए वे कहते कि स्नान करते समय मुझे ऐसा लगता है कि बाबा ही इन हाथों से लोटे भर-भर कर मुझे नहला रहे हैं। इसी प्रकार, भोजन करते हुए बाबा के हाथों की गति इस प्रकार की लगती जैसे कि वे ऐसा अनुभव कर रहे हों कि मानो शिव बाबा ही उन्हें, एक बालक की न्यायी खिला रहे हों। सचमुच, उनका इतना प्यार था, इतना प्यार था कि दोनों बाबा अंग-संग रहते। **संसार में ऐसी कई प्रसिद्ध प्रेम-कहानियाँ सुनी गयी हैं जिनके अनुवाद देश-देशान्तरों में विविध भाषाओं में हुए हैं परन्तु ऐसा अटूट, एकरस, निर्मल, सर्वांगीण, सर्वोच्च प्यार न कभी सुनने को, न पढ़ने को और न कल्पना करने को मिला है और न मिलेगा।**

याद और प्यार की लम्बी दास्तान

बाबा की याद और प्यार की लम्बी दास्तान कहाँ तक सुनायें, कैसे सुनायेंह्न? बाबा की सारी अलौकिक जीवन-कहानी ही एक सर्वोच्च प्रेम कहानी है। जैसे कोई प्रेमिका अथवा प्रेमी अपने स्नेह-भाजन के लिए अपना सर्वस्व लुटा देता है, ऐसा तो बाबा ने इस प्रेम-द्वार में प्रवेश करते ही पहले ही क्षण-पल में कर दिया। हम मीरा के गीत सुनते हैं कि वह प्रेम-दीवानी हुई और उसने लोक-लाज खोयी, परन्तु बाबा की जीवन-गाथा में तो प्रेम का वह रूप सर्वांगीण रूप में पनपा है। बाबा ने उस प्रभु-प्रेम में न केवल लोक-लाज खोयी बल्कि संसार में जितने भी रूपों में अथवा जितने भी सम्बन्धों में प्रेम की अभिव्यक्ति होती है, उन सभी सम्बन्धों में शुद्ध प्रेम की एक तीव्र धारा बाबा के जीवन में देखने को मिलती और बाबा का प्रेम एक ऐसे प्रभु के प्रति प्रेम नहीं था जिसका कोई दैहिक रूप हो और जिसके बारे में आत्मा को केवल धुँधली ही पहचान हो बल्कि बाबा का प्यार उस प्रियतम के पूर्ण परिचय को लेकर उससे वैसे ही ताल-मेल बनाये हुए था जिसमें विछोह का नाम नहीं था, विरह-अग्नि नहीं थी, व्यथा और पीड़ा को स्थान नहीं था बल्कि माधुर्य, लालित्य और आत्मीयता का परम उत्कर्ष था।

ज्ञान और प्रेम का अद्भुत मेल

यह ठीक है कि बाबा में ज्ञान की एक अथाह गहराई थी, तभी तो उनके जीवन में ज्ञान की एक अजीब मस्ती झलकती थी और तभी वे सदा यही कहते कि यह ज्ञान अनमोल और अविनाशी रत्न है। परन्तु वह ज्ञान कोई शुष्क ज्ञान नहीं था। ऐसा भी नहीं कि वे ज्ञान को प्रेम की केवल पुट (Coating) देते बल्कि यूँ कहना ज़्यादा ठीक होगा कि वे जिस ज्ञान की बात कहते, वह प्रेमपूर्ण था और जिस प्रेम का झरना सदा उनके जीवन में बहता, वह ज्ञानपूर्ण था। ज्ञान और प्रेम का उनके जीवन में ऐसा तालमेल था कि दोनों को अलग-अलग बताना असंभव-सा था। जो उनके सम्पर्क में आये हैं, उनमें से कोई तो कहेगा कि उनके जीवन में प्रेम अधिक था और अन्य कोई कहेगा कि वे प्रारम्भ में प्रेम का आश्रय देकर ज्ञान की सुदृढ़ भित्ति पर टिकाने की कोशिश करते। वास्तव में यह देखने वाले की दृष्टि का अन्तर है और अपनी-अपनी जगह दोनों ठीक भी हैं। वास्तव में बाबा के ज्ञान के बोल प्रेम के बिना होते ही न थे और उनके प्रेम के बोलों में सदा ज्ञान भरा रहता था और प्रेम तथा ज्ञानह्न दोनों का लक्ष्य मनुष्यात्मा को पवित्र और योगी बनाना ही था।

ज्ञान और प्रेम साहित्य–वितरण के रूप में

बाबा ईश्वरीय ज्ञान को इतना मूल्यवान समझते थे कि उन्होंने निर्देश दिया हुआ था कि ईश्वरीय ज्ञान के साहित्य को बेचा न जाये क्योंकि बेचने का अर्थ इसका मूल्य चुकाना है जबकि वास्तव में यह अनमोल है, इसका मूल्य कोई चुका ही नहीं सकता। पुनश्च, **वे यह भी कहते थे कि इस ज्ञान को सुन्दर से सुन्दर रूप में, अच्छे से अच्छे कागज पर छपवाया जाये क्योंकि इतने उच्च ज्ञान को रद्दी कागज पर छपवाना और इसकी घटिया-सी छपाई कराना गोया इसके मूल्य को न समझना है।** वे कला और सौन्दर्य को भी महत्त्व देते तथा सुपठनीयता को भी। इस रीति से साहित्य, सांसारिक दृष्टि से महंगा हो जाता है। इस पर भी बाबा कहते कि इसे बेचना नहीं है क्योंकि सभी मेरे बच्चे ही तो हैं, उन्हें साहित्य दाम पर थोड़े ही दिया जायेगाह्न? गोया ज्ञान के साथ-साथ मनुष्यात्माओं के प्रति उनका प्रेम भी उतना ही था कि वे कहते कि इसका मूल्य न लो। परन्तु हुआ यह कि मनुष्य-आत्मायें रूप बच्चे अपने अलौकिक पिता के इस प्रेम के पात्र न बन सके। कहीं भी हम मेज़ पर साहित्य रखते तो लोग उस पर छीना-झपटी करने लगते और कई-कई प्रतियाँ उठा ले जाते। तब भी बाबा के प्रेम में कमी नहीं आयी। **बाबा ने साहित्य को आय का साधन नहीं बनाया बल्कि प्रेमवश इसे जन-जन को वितरित करने की सीख दी ताकि कोई आत्मा इससे वञ्चित न रह जाये।** इसके अतिरिक्त बाबा ने कई अन्य आलौकिक तरीक़े बताये। जब अंग्रेज़ी भाषा में 'रीयल गीता' (Real Gita) और हिन्दी में 'सच्ची गीता' छपवायी गयी तब बाबा ने उसके प्रारम्भ में एक सूचना संलग्न करने का निर्देश दिया। **उसमें लिखा था कि इसमें का ज्ञान अनमोल ख़ज़ाना है। इस पुस्तक का केवल उतना ही दाम रखा गया है। यदि पढ़ने पर किसी को पसन्द न आये तो वह ठीक हालत में इसे वापस लौटाकर अपने दाम वापस ले जाये।** वह इतनी बड़ी पुस्तक थी और उसके दाम इतने कम थे कि उसे लेने वाले आश्चर्यान्वित होते थे। आज तक भी लोग उसकी प्रतियाँ मांगते हैं।

हर परिस्थिति में बाबा की याद

बाबा का शिव बाबा से ऐसा तो ज्ञानयुक्त प्यार था कि वे हर परिस्थिति को निमित्त बनाकर उनकी याद में रहते। वे कोई 'टोली' (प्रसाद) बाँटते तो भी पूछतेह्न ''क्या शिव बाबा को याद किया है और यदि कोई समस्या सामने आती तो भी कहते कि शिव बाबा को याद करो तभी पुरुषार्थ में पूर्णता आयेगी।'' जैसे किसी छोटे बच्चे को प्रातः जागते ही माँ की याद आ जाती है और उसके मुख से ''माँ-माँ'' शब्द ध्वनित हो जाते हैं अथवा जैसे किसी प्रौढ़ व्यक्ति को अपने परिवार की सुधि बनी ही रहती है, वैसे ब्रह्मा बाबा को शिव बाबा की प्रेम-विभोर स्मृति बनी ही रहती। इसीलिये वे सदा उस ही की चर्चा करते। एक बार बाबा शरद ऋतु में वत्सों सहित पहाड़ी पर घूमने गये तो लौटने के समय तक धुन्ध इतनी बढ़ गयी कि दो फुट आगे का मार्ग भी दिखायी नहीं देता था। सभी थोड़ी देर रुके रहे ताकि धुन्ध कम हो जाये। परन्तु धुन्ध और कोहरा (Fog) कम हुए ही नहीं। तब बाबा ने मुस्कराते हुए सन्देशी को कहाह्न ''ध्यानावस्था में जाकर बाबा से कहो कि वापस जाना है, वहाँ सभी हमारी प्रतीक्षा कर रहे होंगे, परन्तु रास्ता ही स्पष्ट दिखायी नहीं देता...ह्न!'' सन्देशी अव्यक्त स्थिति में, ध्यानावस्था में गयी और उसने बाबा को यह बात कह सुनायी...।'' खैर, वह एक अलग ही किस्सा है परन्तु प्रसंग में इसका उल्लेख करने का भाव यह है कि लौकिक, स्थूल परिस्थितियों को भी बाबा शिव बाबा की याद के निमित्त बना लेते। बस बाबा, बाबा, प्यारे बाबा, मीठे बाबा ही की याद उनके मन में बनी रहती। जैसे रात्रि को दो घनिष्ठ दोस्त, छोटे बालक सोने के लिए अपने-अपने घर चले जाते हैं और प्रातः होते ही फिर एक-दूसरे से विदा न होते। प्रातः दो-ढाई बजे तो बाबा उठ जाते परन्तु वे तो कहा करते कि मैं बाबा ही के साथ सोता हूँ। यह प्यार और याद का कैसा ताँता और नाता हैह्न!!

शिव बाबा के यज्ञ की संभाल

उन दिनों बाबा प्रातः क्लास के बाद विश्राम कक्ष (Chamber) में भी वत्सों से अनौपचारिक रूप से ज्ञान-चर्चा किया करते। यह वही कमरा था जहाँ आजकल दादी जी का कार्यालय (Office) है। एक बार बाबा वहाँ वत्सों के समक्ष ज्ञान-चर्चा कर रहे थे। वत्सों ने देखा कि बाबा के एक पांव के अँगूठे को छोटी-सी पट्टी बँधी हुई थी। एक वत्स ने पूछा- ''बाबा, यह क्या हुआ हैह्न?'' बाबा ने कहाह्न ''बच्ची, रात्रि को जब सोया हुआ था तो स्वप्न में देखा कि इस कमरे के सामने वाली पहाड़ी पर वत्सों के वस्त्र सूख रहे हैं। (आजकल जहाँ निर्वैर भाई का आफ़िस और स्वागत कक्ष है, पहले वहाँ पहाड़ी थी) तब यह भी देखा कि कुछ पशु अन्दर घुस आये हैं और वे कपड़ों को उठाकर चबाना चाहते हैं। तो बाबा ने सोचा कि उठकर इन्हें हटाना चाहिए और शिव बाबा के यज्ञ की चीज़ों को हानि पहुँचने से बचाना चाहिए। मैंने जल्दी से जाने की कोशिश की तो स्वप्न-अवस्था में ही जैसेकि पाँव-से थोड़ा-सा लगा। उससे बहुत मामूली-सी झरीट आयी है। बच्चे, थोड़ा-बहुत जो हिसाब-किताब है, वह तो सामने आता ही है और

चुक्ता होता जा रहा है। हम ब्राह्मणों को इस यज्ञ की हरेक चीज़ की संभाल तो करनी ही है नह्न? **बच्चे, बाबा हर बात का ध्यान रखता है कि कहीं बच्चों की गफ़लत से शिव बाबा के यज्ञ की किसी चीज़ का नुकसान न हो। इसीलिए बाबा यहाँ समय निकाल कर एक-आध चक्कर लगा कर भी देखते हैं कि कहीं कोई वस्तु व्यर्थ तो नहीं जा रही।''** इस प्रकार, बाबा न केवल प्रीति-पूर्वक याद ही करते और न केवल ज्ञान में रमण ही करते बल्कि सभी से अधिक उन्हें ही सेवा तथा यज्ञ-कार्य का ख्याल रहता। गोया शिव बाबा के प्रति उनका जो घनिष्ठ प्यार था वह उन्हें कर्म में भी प्रवृत्त करता था।

अद्भुत सन्तुलन

जैसे बाबा के जीवन में ज्ञान और प्रेम का अद्भुत तालमेल था वैसे ही बाबा के जीवन में हर प्रकार से सन्तुलन था। वे देही-अभिमानी (Soul-consicious) बनने पर तो पूरा ज़ोर देते ही थे परन्तु देह के स्वास्थ्य और उसकी संभाल की अवलेहना करने को नहीं कहते थे। हाँ, वे यह तो कहते थे कि बार-बार शारीरिक अस्वस्थता की चर्चा करके हमें अपने श्वास वृथा नहीं गँवाने चाहिएँ क्योंकि आज जबकि प्रकृति तमोप्रधान है और हमने अज्ञान काल में विकर्म भी किये हैं तो रोग और व्याधियाँ तो शायद आयेंगी ही, अतः उन्हीं में मन-बुद्धि लगाये रखने से तो हम शिव बाबा की याद के लिए समय निकाल ही नहीं पायेंगे। अतः वे कहतेह्न ''बच्चे, दवा और दुआ दोनों से काम लो और रोग की अवस्था में भी योग को न भूलो वरना देह-अभिमान का संस्कार पक्का होता जायेगा।'' इस पर भी वे यह कहते कि यह शरीर मूल्यवान है, अतः इसे कोशिश करके ठीक रखो ताकि इस द्वारा ईश्वरीय सेवा भी कर सको और आपके योग-रूप पुरुषार्थ में विघ्न न पड़े।

इसी प्रकार, बाबा अच्छा भोजन खाने के लिए भी कहते हैं परन्तु साथ-साथ यह भी सम्मति देते कि अपने पेट-पालन पर ही अधिक ख़र्च न करो और कि पदार्थ खाओ भले ही परन्तु उनके प्रति आप में आकर्षण नहीं होना चाहिए। अतः वे जीवन को शुष्क बनाने के लिए नहीं कहते परन्तु साथ-साथ सादगी, स्वच्छता और सात्त्विकता पर भी बल देते।

कोई स्थान-बाग-बगीचा आदि घूमने या देखने के योग्य होते तो वे उसे देखने या वहाँ तक जाने के लिए मना न करते बल्कि कई बार स्वयं ही कहा करते कि जाकर उसे देख आओ परन्तु दूसरी ओर वे यह भी कहते कि ''बच्चों में घूमने और देखने का शौक या व्यर्थ की हॉब्बी (Hobby; शौक) नहीं होनी चाहिए।'' वे कहते कि किसी ऐतिहासिक अथवा प्राकृतिक

सौन्दर्य के स्थान को देखो, उसको देखते हुए भी अपनी योग-स्थिति को मत छोड़ो और आने वाली सतयुगी सृष्टि के अतुल सौन्दर्य को मत भूलो। अतः वे कहते कि सदा यह याद रखो कि शिव बाबा हमें जिस अद्भुत सतयुगी सृष्टि में ले जा रहे हैं, वह तो अतुलनीय है। उसकी आभा और शोभा, उसका सुख और सौन्दर्य अद्वितीय है। इस प्रकार, बाबा विचित्र रीति से सन्तुलन रखते और योग-स्थिति को बनाये रखने की ओर ध्यान दिलाते।

बाबा के जीवन के जिस पहलू की जितनी चर्चा करें, उतनी कम है। उनके मुख पर सदा मुस्कान होती परन्तु वे अन्तर्मुखी और गम्भीर भी होते; वे ख़ूब टोली खिलाते और पिकनिक (Picnic) कराते परन्तु साथ-साथ वे बाजार के खान-पान से मन हटा देते और मन की तृष्णाओं को भी शान्त करा देते; वे अथक रीति से सेवा करने तथा कर्म करने में प्रवृत्त करते परन्तु वे उतना ही ध्यान अपनी मनोस्थिति और अपने परम पुरुषार्थ पर दिलाते और अलबेलेपन से होने वाली अवर्णनीय क्षति के प्रति भी सचेत करते; वे मनोविनोद तथा खेल-मेल में भी ले जाते परन्तु उतनी ही महत्ता वे विदेहावस्था, उपराम अवस्था तथा मौनावस्था को भी देते। इस प्रकार, एक निराला और सर्वांगीण व्यक्तित्व था बाबा का जो प्रेरक था, आकर्षक भी था, आदर्श भी था, व्यवहारिक भी था, लौकिक चर्चा में भी कुशलता लिये हुए था और अलौकिक तथा पारलौकिक दृष्टिकोण से भी सर्वश्रेष्ठ था।

ब्रह्मा बाबा, समस्त मानव-कुल के पितामह

– भ्राता जगदीश चन्द्र

ब्रह्मा बाबा के साकार जीवन रूपी गुण-सागर का जब हम मंथन करते हैं तो हमें नये-नये हीरे और रत्न प्राप्त होते हैं। बाबा के जीवन-वृत्त की रील (reel) जब मन के सामने से गुज़रती है तब किसी दृश्य को देखकर तन हर्ष में हिलोरें लेने लगता है, तो किसी दूसरे दृश्य से ऐसा प्रेम-प्लावित हो उठता है कि नैन भीग जाते हैं। बाबा के जीवन में अनेकानेक विशेषताओं और महानताओं को देखकर मुख से स्वतः ही ये शब्द विनिसृत होते हैं, 'वाह, प्यारे बाबा, वाहह्न!'

शिव बाबा से ऐसी घनिष्ठता का आधार क्या थाह्न?

सोचने की बात है कि बाबा के जीवन में वह कौन-सी अद्भुत महानता थी कि उन्हें शिव बाबा का ऐसा निकट्य प्राप्त हुआह्न? जब वे साकार रूप में थे तब भी शिव बाबा उनके तन रूपी कुटिया में उनके संग रहते रहे और जब से वे अव्यक्त हुए हैं तब से भी वे प्रकाशपुरी में उनके संग रहते हैं। शिव बाबा से ऐसी घनिष्ठता प्राप्त कराने वाली भी तो विशेषतायें ब्रह्मा बाबा में रही होंगी। शिव बाबा ने उन्हें ऐसा अपना लिया, उनसे ऐसी मित्रता जोड़ ली, ऐसा नाता बना लिया कि दोनों सदा अंग-संग ही रहते रहे और अब भी एक-साथ ही हैं। जिस परमपिता की एक झलक के लिए भी द्वापरयुग के भक्तिकाल में भक्तराज तरसते थे अथवा जिससे मानसिक रूप से सम्पर्क मात्र स्थापित करने के लिए विविध प्रकार के 'योगी' एकाग्रता का घोर अभ्यास करते रहे, उस शिव बाबा ने ब्रह्मा बाबा को ऐसा तो अपना लिया कि हम लगभग आधी शताब्दी से ज़्यादा दोनों का अटूट और घुला-मिला सम्बन्ध देखते हैं। प्रभु-प्रेम के कई आकांक्षी तो मुक्ति प्राप्त करने के बाद आत्मा के परमात्मा में लीन होने की असम्भव बात कहते आये परन्तु साकार में भी प्रभु की ऐसी मैत्री, ऐसा पारस-संग, ऐसी निकटता और अव्यक्त होने पर भी ऐसा मेल-मिलन तो किसी ने सोचा ही नहीं होगा। अतः विचार करने की बात है कि बाबा के जीवन की अनेक अनमोल विशेषताओं में से ऐसी कौन-सी विशेषता थी जिससे उन्हें यह परम सौभाग्य प्राप्त हुआ।

इसका उत्तर पाना कठिन नहीं है क्योंकि बाबा की वह विशेषता प्रत्यक्ष ही थी। वह यह कि **बाबा के मन का अटूट नाता एक शिव बाबा ही से था। बाबा को और किसी चीज़ की चाह थी ही नहीं। न उन्हें मान की इच्छा थी, न शान की, न धन की, न सत्ता की, न गुरुडम की, न भभके की। वे तो सदा शिव बाबा ही के गुण गाते थे।** उन्होंने मुंबई के हैंगिंग गार्डन के बूट को देखकर यहाँ तक कह दिया कि यह तन तो शिव बाबा का 'लांग बूट' (Long Boot) है, "यह शिव बाबा की कुटिया है सो भी ऐसी कि मुरम्मत माँगती रहती हैह्न!" उन्होंने अपने सभी नाते शिव बाबा से जोड़े हुए थे। उनके प्रारम्भिक वाक्यों में से एक यह था कि "पाना था सो पा लिया और क्या बाक़ी रहाह्न?" उनके पास पहले जो भी सम्पत्ति थी वह सब भी उन्होंने शिव बाबा को समर्पित कर दी थी।

उन्होंने उसके बाद एक पैसा भी अपना नहीं समझा। कई वर्षों तक वे अपने पत्रों के अन्त में हस्ताक्षर से पहले लिखते थेह्न ह्न 'आज अकिंचन कल विश्व-महाराजन' (Begger to Prince)। वे भोजन करते तो भी शिव बाबा की याद में अथवा शिव बाबा के साथ ही। मधुबन में तब प्रायः नित्य प्रति ही भोग लगा करता। ब्रह्मा बाबा कहते कि शिव बाबा के साथ मनाने के यही तो दिन हैं। जब वे शिव बाबा से मनोमिलन और सूक्ष्म वार्तालाप की बात समझाते, तब शिव बाबा के प्यार में उनके हाव-भाव देखने योग्य होते। उनके अपने व्यक्तित्व या व्यवहार से यदि कोई प्रभावित होता और महिमा करता तो भी वे यही कहते कि "महिमा एक शिव बाबा ही की करो जिसने हम सभी को उच्च बनाया है; हम तो कुछ भी जानते नहीं थे।" **शिव बाबा के बनाये हुए जो भी नियम थे और जो भी निर्देश थे, उनमें से किसी एक की भी, रंच मात्र भी अवहेलना नहीं की।** उनकी बातचीत से तथा दिनचर्या से, बस, यही महसूस होता कि जैसे भक्तिमार्ग में वे श्रीनारायण के चित्र को सदा अपने साथ रखते थे, अब परमपिता शिव का परिचय होने पर वे अपार प्रेम से शिव बाबा को ही अपना सर्वस्व मानकर उनको अपने साथ ही रखते थे। गोया उनकी अटूट प्रीति थी। जो ज्ञानयज्ञ उन्होंने स्थापित किया उसमें उनके लौकिक, नज़दीकी सम्बन्धी भी थे परन्तु अब बाबा के सभी घनिष्ठ सम्बन्ध प्रथमतः शिव बाबा ही से थे; अन्य सभी को वे शिव बाबा के वत्स समझकर संभालते थे। वे कहा भी करते कि जब प्राण तन से निकले तो केवल एक शिव बाबा ही की याद हो और उससे पहले, जीवनकाल में, उन्हीं के संग खायें, उन्हीं के संग बैठें, उन्हीं के साथ ही हमारे सभी नाते हों। यही उनकी प्रीति थी जिसने उन्हें शिव बाबा के इतने निकट होने का परम सौभाग्य प्राप्त कराया।

पिता–तुल्य संरक्षण, स्नेह और सहायता देने में निपुण

शिव बाबा से ऐसी धनिष्ठता के कारण उनमें उत्तम गुण थे। एक मानवी आत्मा होते हुए भी वे अन्य सभी मनुष्यों से भिन्न थे। उनमें पिता-पन का प्रेम था। जैसे पिता अपने सभी बच्चों को अच्छा पद प्राप्त करते देख हर्षित होता है, वैसा ही हर्ष उन्हें होता था। संसार में हम देखते हैं कि यदि किसी व्यक्ति के बच्चे जीवन में उच्च स्थान प्राप्त कर लेते हैं तो वह सभी से यह कहते हुए खुश होता है कि उसका एक बच्चा डॉक्टर है, दूसरा प्रोफ़ेसर है और तीसरा इंजीनियर। बच्चों में से तो कोई ऐसा भी होता है जो दूसरे भाई को अधिक पैत्रिक सम्पत्ति मिलते देखकर ईर्ष्या भी करता हो या सांसारिक दृष्टि से कम सम्पन्न होने पर अपने दूसरे भाइयों से द्वेषभाव रखता हो। परन्तु एक योग्य पिता की तो सदा यही इच्छा बनी रहती है कि उसके सभी बच्चे सुयोग्य हों और सदा सुखी हों। ऐसी ही भावना बाबा की अन्य सभी मानवी आत्माओं के प्रति रहती थी। वे सदा यही कहते कि "अमुक वत्स विवाहित होने पर भी पवित्र है, अतः वह संन्यासियों से भी आगे हैं; अमुक बच्चा ऐसी उच्च और इतनी अधिक ईश्वरीय सेवा करता है कि वह बाबा का दिलतख़्त-नशीन है; अमुक इतना चरित्रवान है और गुणवान है कि बाबा भी उसकी महिमा करते हैं।" वे वत्सों की महिमा करते हुए यह भी कह देते कि "ये बाबा से भी अधिक सेवा करते हैं अथवा यह अन्य आत्माओं को ज्ञान समझाने में बाबा से भी अधिक होशियार हैं।" इस प्रकार, दूसरी आत्माओं को तीव्र पुरुषार्थ करते देखकर अथवा जीवन में सफल होते देखकर वे ख़ुश ही होते थे।

फिर जैसे पिता अपने बच्चों का संरक्षक भी होता है, वे भी वैसे ही स्नेह एवं संरक्षणपूर्वक व्यवहार करते। वे प्रायः वत्सों को पत्र लिखकर उनका हर्ष, उल्लास, उत्साह और उमंग बढ़ाते रहते और उन्हें मार्ग-प्रदर्शना देकर माया के कंटकों से उनका संरक्षण करते। यदि किसी का कई दिन तक पत्र न आता तो वे उसे विशेष रूप से स्नेहयुक्त शब्दों में लिखते कि "बच्चे, पत्र न आने से 'बाप' को बच्चों की अवस्था के बारे में ख्याल चलता है; अतः जल्दी-जल्दी पत्र लिखा करो।"

कितने ही लोग ऐसे हैं जो पहले अपने लौकिक सम्बन्ध तथा व्यापार में भी शायद ही कभी किसी को पत्र लिखते होंगे परन्तु अब बाबा के पत्र जब सेवाकेन्द्र पर आते और उनमें इनके लिए भी याद, प्यार, सन्देश और निर्देश होते तो अब वे भी बाबा को स्नेह से पत्र लिखते। एक सांसारिक मनुष्य के पास तो तार कभी-कभी ही आता है और वह भी तभी जब कोई निकटवर्ती सम्बन्धी सख्त बीमार होता है या किसी की मृत्यु हो जाती है परन्तु बाबा तो बच्चों को ईश्वरीय सेवार्थ सन्देश देने के लिए तार कर दिया करते। इससे कितने ही बच्चों में नया उत्साह भर जाताह्न!

इस प्रकार प्रैक्टिकल में पितृ-तुल्य स्नेह, सहयोग और संरक्षण देकर बाबा ने आत्माओं का परमपिता शिव के साथ मन का स्नेह जोड़ा और उन्हें पुत्र-तुल्य व्यवहार करना सिखाया। अलौकिक पिता का कर्त्तव्य निभाते हुए उन्होंने अलौकिक अर्थात् आध्यात्मिक वत्स का नाता निभाने का पाठ पढ़ाया।

अभय और शक्ति रूपा बनने का वरदान

बाबा के गुणों का जितना वर्णन करें उतना थोड़ा है। उन्होंने हर वर्ग में अलौकिकता का संचार किया। माताओं-

माताओं को शिव बाबा के महावाक्य सुनाते हुए बाबा

बहनों को ईश्वरीय सेवा के निमित्त मुख्य स्थान देते हुए उन्होंने उनमें शक्ति रूप धारण करने की भी प्रबल प्रेरणा दी। उन्होंने कहाह्ह **''देखो, आप सभी आत्माओं का आदि स्वरूप चतुर्भुज है। चतुर्भुज की चार भुजाओं में से दो स्त्री की और दो पुरुष की अर्थात् दो श्रीलक्ष्मी की और दो श्रीनारायण की प्रतीक हैं। अतः आप स्वयं को एक 'अबला नारी' न मानकर चतुर्भुज समझो। गोया आप में नारी और नर दोनों रूपों के संस्कार हैं। अतः स्त्री रूपी चोले को देखकर डरने का कोई कारण नहीं है** क्योंकि वास्तव में तो आप अलंकृत हैंह्ह शंख,चक्र,गदा और पद्म आपके अलंकार हैं। इस प्रकार 'शक्ति रूप' और 'चतुर्भुज रूप' की स्मृति दिला-दिलाकर कन्याओं-माताओं को, जिन्हें लोग 'अबला' मानते हैं और जो स्वयं भी स्वयं को नारी मानते हुए हीन भाव लिये रहती हैं, उन्हें ज्ञान-शक्ति, योग-शक्ति और पवित्रता-शक्ति देकर विश्व के कल्याण के निमित्त अभय और निर्भय बनाया। जो कभी किसी से बात करने में भी पहले संकोच करती थीं, अब वे मंच से निर्भीक होकर 'आत्मा' और 'परमात्मा' के गहन विषयों पर सुगमता और सरसता से प्रभावशाली भाषण करतीं, जो पहले हर समस्या के समाधान के लिए पुरुषों पर निर्भर करती थीं, अब वे पुरुषों को भी परामर्श देकर उनकी समस्याओं का भी हल कर देती हैं। इस प्रकार, ब्रह्मा बाबा ने हर वत्स को कुछ-न-कुछ वरदान देकर उसे ईश्वरीय कार्य में सहयोगी बना लिया। इसी कारण ही तो चित्रकार प्रजापिता ब्रह्मा की हज़ारों भुजायें दिखाते हैं।

सभी में योग्यता भरने की कला में निष्णात

वरदान देकर योग्य बनाना और ईश्वरीय सेवा में जुटाना तो ब्रह्मा बाबा की विशेष कला थी। किसी को उन्होंने भवन कला में निष्णात, निपुण बना दिया कि उसने इतना बड़ा पाण्डव भवन, योग भवन आदि का निर्माण करा डाला तो किसी अन्य को हिसाब-किताब की कला सिखाकर अथवा शीघ्र नोट लेने का वरदान देकर लेखाधिकारी अथवा शीघ्र लिपिक बना दिया। जो पहले किसी स्कूल या कॉलेज में भी उस विद्या को नहीं पढ़े थे, उन्हें पढ़े-लिखों से भी अधिक कुशल और अनुभवी

बना डालाह्ह यह बाबा की कमाल थी। आज वे वत्स इतने अलौकिक रूप से इतनी विशाल सेवा करने में तत्पर हैं कि उनके कार्य-कौशल, कला-कृत्य को देखकर लोग आश्चर्यान्वित होते हैं कि किसी कलह-क्लेश और रगड़े-झगड़े के बिना वे इतना विशाल कार्य करा रहे हैं!

इस प्रकार, हम देखते हैं कि वे योगियों में शिरोमणि थे और स्वयं गुणों से भरपूर भी थे। परन्तु विशेष बात यह कि वे दूसरों में गुण भरने, उन्हें वरदान देने, उनमें योग्यता लाने, उनकी उन्नति में ख़ुश होने, उनको संरक्षण, स्नेह एवं सहयोग देने में भी कलावान थे। उनकी सदा-स्थायी मुस्कान, उनके नेत्रों में शिव बाबा की याद की झलक, उनके महावाक्यों में माधुर्य और रूहानियत, उनके हर क़दम में लोक-संग्रह, इतना महान् होने पर भी उनकी नम्रता, विकट परिस्थितियाँ सामने आने पर भी उनकी निर्भीकता एवं निश्चिन्तता, उनकी सात्त्विकता, उनका सन्तोष और उनका झर-झर करता हुआ प्रेम का शाश्वत झरना, उनकी अमिट प्रभु-प्रीति और अटल निश्चय, उनका बहुमुखी व्यक्तित्व अद्वितीय ही था जिससे कि वे मानव मात्र के पिताश्री बनने के पूर्णतः योग्य थे।

ऐसे थे हमारे और जगत के बाबा!

– भ्राता जगदीश चन्द्र

यह बात सन् 1955 की है। तब मुझे समाचार मिला कि दादी कुमारका जी, रत्नमोहिनी बहन और भाई आनन्द किशोर जी अमुक तिथि को एक समुद्री जहाज़ से मद्रास (चैन्नई) बन्दरगाह पर लौट रहे हैं। उन दिनों जापान में हो रहे सम्मेलन से सम्बन्धित सारे पत्राचार (Correspondence) और छपाई इत्यादि का कार्य बाबा ने मुझे सौंपा हुआ था।

जापान के विश्व धर्मसम्मेलन में भाग लेते हुए दादी कुमारका जी, दादी रतनमोहिनी जी तथा दादा आनन्द किशोर जी।

कितनी कठिन परिस्थितियाँ होने के बावजूद भी ईश्वरीय सेवा के लिए बाबा ने सदा ही प्रोत्साहन दिया

मैंने बाबा को लिखा, "प्यारे बाबा, मेरा विचार है कि जब ये बहन-भाई मद्रास में पहुँचें तब मद्रास में पत्रकार सम्मेलन हो।" उन दिनों यह यज्ञ कठोर आर्थिक कठिनाई के दौर में से गुज़र रहा था परन्तु पत्र मिलते ही बाबा ने मुझे इसके लिए स्वीकृति की सूचना दे दी और मधुबन बुला लिया। मैं मधुबन पहुँचा तो बाबा को मालूम हुआ कि मेरे पास पर्याप्त वस्त्र ही नहीं हैं कि चार-पाँच दिन लगातार इतनी लम्बी यात्रा कर सकूँ और वहाँ जाते ही कपड़े धुलाये बिना उस मौके को ठीक तरह से निभा सकूँ। परन्तु एक तो आर्थिक कठिनाई, दूसरे अब तुरन्त तीन-चार जोड़े कहाँ से सिलवाऊँ? बाबा ने वस्त्रों के स्टॉक की संभाल रखने वाली बहन को निर्देश दिया कि वह पुराने कपड़ों के स्टॉक में से मेरे लिए कोई वस्त्र ढूँढ़े और यदि उसमें से कोई पैण्ट इत्यादि मिल जाये तो मेरे लिए निकाल दे। उसने ऐसा ही किया। मेरे लिए दो सफ़ेद पैण्ट निकाल दीं। वो पैण्ट मुझे बहुत छोटी होती थी, टखनों से भी ऊपर तक ही पहुँच पाती थी परन्तु जब बाबा ने मुझसे पूछा, "बच्चे, वस्त्र ठीक हैं?" परिस्थिति को देखते हुए तो मैंने कहा, "हाँ बाबा।" वास्तव में मुझे पैण्ट पहनने का अभ्यास भी नहीं था। मैंने जीवन में केवल एक रात्रि को ही अपने एक बड़े भाई के विवाह के अवसर पर, अज्ञान काल में, उनके आग्रह पर पैण्ट पहनी थी। परन्तु यह बाबा ने दी थी, इसीलिए इसी को वरदान मानकर स्वीकार किया। सोचा कि इसको पेट से काफ़ी नीचे बाँध लूँगा।

आबू से अहमदाबाद और फिर बंबई (मुंबई) पहुँचा। वहाँ से जानकी दादी जी भी पत्रकार सम्मेलन करने मेरे साथ मद्रास गयीं। वहाँ उनके एक लौकिक सम्बन्धी के यहाँ हम ठहरे जिनका निवास तत्कालीन मुख्य मंत्री के बंगले के साथ वाली बिल्डिंग में ही था। अतः उनके सम्बन्ध से मुख्य मंत्री के यहाँ से ही हमने प्रैस वालों को फोन कर दिये कि आज अमुक समय प्रैस कान्फ्रेन्स होगी और उन्हें पूछताछ के लिए वहीं का ही टेलीफोन नम्बर हमने दिया। हम तो इस बात से अनभिज्ञ थे और हमने भोलेपन से ही वह नम्बर दे दिया था परन्तु सभी समाचार पत्रों के संवाददाताओं को तो यह मालूम था कि यह मुख्य मंत्री के बंगले का फोन नम्बर है। हमने सम्मेलन के लिए सायंकाल का समय दिया था और जापान से आने वाले हमारे भाई-बहनों ने प्रातः लगभग 10-11 बजे तक पहुँच जाना था परन्तु वे सायंकाल प्रैस कान्फ्रेन्स के समय तक भी नहीं पहुँचे! तथापि हमने प्रैस वालों के लिए एक वक्तव्य बना रखा था। मुख्य मंत्री के आवास के टेलिफोन नम्बर के कारण काफी रिपोर्टर आ गये थे। हमने

उन्हें उस वक्तव्य की टंकित लिपि (Typed copy) दे दी। वह वहाँ के मुख्य समाचार पत्र 'दि हिन्दु' तथा अन्य समाचार पत्रों में छप गयी।

इसके बाद जब हम बंबई आये तो बंबई में भी रिपोर्टर्स को बुलाया गया था। वहाँ टाइम्स ऑफ इण्डिया का संवाददाता और फ्री प्रैस जरनल (Free Press Journal) का संवाददाता भी स्टेशन पर आये थे और इण्डियन एक्सप्रेस (Indian Express) ने अपने एक स्थाई स्तम्भ में फोटो सहित प्रैस-इण्टरव्यू (Press Interview) छापा था। इस प्रकार उससे ईश्वरीय सेवा हो गयी थी।

आज जब वह वृत्तान्त याद आता है तो सोचता हूँ कि कितनी कठिन परिस्थितियाँ होने के बावजूद भी ईश्वरीय सेवा के लिए बाबा ने सदा ही प्रोत्साहन दिया। बाबा हमेशा कहा करते कि "बच्चे, पेट के भोजन के ख़र्च से भी बचाकर ईश्वरीय सेवा में लगाना चाहिए।" इतनी प्रेरणा देते थे बाबा ईश्वरीय सेवा के लिए!

ईश्वरीय सेवा की तीव्र गति

ईश्वरीय सेवार्थ बाबा के कार्य करने और कराने की रफ़्तार देखते ही बनती थी। उससे तो किसी को भी यह आभास हो सकता था कि सचमुच यहाँ सारे विश्व को सन्देश देने की मुहिम चल रही है अथवा यह युग-परिवर्तन एवं विश्व-परिवर्तन का कार्य चल रहा है। प्रतिदिन डाक द्वारा भेजने के लिए लिटरेचर के बहुत-से पैकेट बड़ी तीव्र गति से बन रहे होते। प्रतिदिन प्रातः बाबा स्वयं भी बहुत तीव्र गति से बहुत-से पत्र लिख रहे होते। हर आये दिन बाबा किसी विषय पर कोई पुस्तिका, फ़ोल्डर या हैंडबिल आदि छपवाने का निर्देश देते। उन दिनों दिल्ली में डाकघर दिन में तीन बार डाक बाँटता था और हर डाक में बाबा के दो-तीन या कम-से-कम एक पत्र कोई-न-कोई नयी चीज़ छपवाने के बारे में होता और मज़े की बात तो यह होती कि हर बार एक तिथि निश्चित की गयी होती जिस तिथि तक वह साहित्य छपवा कर सेवा-स्थानों पर पहुँचा देना होता। जिस समय पत्र मिलता उसी समय ही लिखने और अनुवाद करने की गुँजाइश ही न होती कि एक-आध दिन या 4-5 घण्टे का वक़्फ़ा (अवधि) डालने से वह समय पर हो पाये। जब हम हाँपते-हाँपते प्रैस में पहुँचते तो छापेख़ाने का मालिक या मैनेजर हमारे बैठते ही मुस्कराते हुए, हाथ जोड़कर कहता, "जगदीश भाई, आप अर्जेंट (Urgent) काम ही लाये होंगे! है ना अर्जेंट? देखो भाई, इस बार मैं हाथ जोड़कर कहता हूँ कि मुझे माफ़ करो।" मैं कहता, "माफ़ी तो भगवान से माँगो, यह तो उसी का काम है और इस बार तो बहुत ही अर्जेंट है।" बेचारा बहुत आवेदन-निवेदन करता परन्तु हम उसकी कहाँ मानते थे? मान भी कैसे सकते थे? वह कहता, "जगदीश भाई, अर्जेंट तो कभी-कभी होता है परन्तु आप तो हर बार यही कहते हो कि यह अर्जेंट है।" कई बार तो वे बिल्कुल ही अड़ जाते और हमारी ओर से अनुनय-विनय से भी काम न चलता। छापेख़ाने में अक्षर जोड़ने वाले (कम्मोज़िटर; Compositor) भी हमारी ओर से मैनेजर को कहते, "आप इनका काम ले लीजिये, हम रात को देर तक कर देंगे।" परन्तु वे मिट्टी का माधो बनकर बैठ जाते और 'हाँ' न करते। तब हमें भी रूप रचना पड़ता। जब यह कहने से बात न बनती कि यह तो सतयुग की स्थापना के लिए कार्य है, आदि-आदि... तब कई बार तो यह भी कहना पड़ता कि "प्रैस तो शिव बाबा की है, यहाँ तो उसी का काम चलेगा। क्या यह शिव बाबा का नहीं है?" वह कहते, "है तो सब कुछ शिव बाबा का ही, हम भी उन्हीं के हैं।" इस प्रकार, हुज्जत भी न चलती तो हम साफ़ बोल देते कि हम तो मशीन रोक देंगे। परस्पर प्रेम तो था ही। आख़िर वह समझ जाते कि सचमुच इन्हें इस काम की जल्दी है और बाद में फ़ुर्सत में कभी संस्था की प्रशंसा करते हुए कहते कि "आपके बाबा सचमुच कमाल के हैं जो सारा ही काम वैरी अर्जेंट (Very Urgent) बताते हैं। बाबा ने आप लोगों की लगन इतनी तीव्र कर दी है कि इस संस्था के कार्यकर्त्ता न अपने भोजन का ख्याल करते हैं, न आराम का और हम लोग उन्हें कुछ खाने के लिए पेश करते हैं तो वे कहते हैं कि हमें बाहर का नहीं खाना। आप सब लोगों की लगन देखकर और इसे शिव बाबा का ही कार्य समझकर, हम और काम छोड़कर भी पहले इसे करते हैं...।"

बाबा केवल छपाई के लिए ही जल्दी नहीं करते बल्कि उसे जल्दी भिजवाने के लिए भी कोई कोर-कसर न छोड़ते। हम हर बार जब स्टेशन पर पार्सल बुक करवाते, तब अपने सामने ही पहली गाड़ी में चढ़वाने पड़ते। बहुत बार स्टेशन सुपरिंटेंडेंट से पार्सल के फ़ार्म पर "तुरन्त भेजो" (Send at once) लिखवाना पड़ता और कितने ही पार्सल तो स्टेशन पर पहली गाड़ी से जाने वाले फ़र्स्ट क्लास या एयर-कंडिशन कोच में जाने वाले यात्रियों द्वारा भेजने पड़ते। ऐसा भी होता कि किसी भाई को एक दिशा में एक गाड़ी में सब पार्सल देने पड़ते और रास्ते में आने वाले सब सेवाकेन्द्रों पर तार कर दी जाती अथवा टेलीफ़ोन खड़का दिये जाते कि वे अमुक गाड़ी से अपना पार्सल ले लें। रात-दिन सेवा का कार्य चालू था।

उन दिनों रिवाज़ यह था कि किसी के घर में तो तब तार आती थी जब उनके किसी निकट सम्बन्धी का शरीर छूट गया होता परन्तु यहाँ तो प्रतिदिन दो-दो, तीन-तीन तार आते थे।

देहली में कमला नगर स्थित सेवाकेन्द्र, जहाँ से यह कार्य होता था, वहाँ ही पहले दीदी (मनमोहिनी) जी भी रहा करती थी। उस सेवाकेन्द्र के नीचे वाली मंज़िल पर मकान मालिक रहता था। वे रात्रि को नीचे का द्वार बन्द कर दिया करते थे। अतः प्रायः हर रात्रि को तार वाला नीचे से आकर आवाज़ देताह्न ''तार वाला। ब्रह्माकुमारी जी! तार ले लो।'' आसपास के लोग ये आवाज़ें सुनकर आश्चर्यचकित होते कि यहाँ रोज़ ही तार आते हैं! यह है तो धार्मिक संस्था, धर्म के कार्य में रोज़ तार की क्या आवश्यकता!! तार में या तो यह लिखा होता कि तुरन्त साहित्य भेजो या अमुक ब्रह्माकुमारी को अमुक सेवाकेन्द्र पर भेजो। पड़ोसी भी रोज़ देखते कि अभी-अभी एक ताँगे में कुछ ब्रह्माकुमारी बहनें सेवाकेन्द्र पर आकर अपना सामान उतार रही हैं और पास में ही खड़े दूसरे ताँगे में पहले ही से कुछ दूसरी ब्रह्माकुमारियों का सामान लादा जा रहा है। अवश्य ही उनके मन में प्रश्न उठते होंगे कि यह कैसी विचित्र संस्था है! मानो कहीं लड़ाई हो रही है, कुछ फ़ौजी भेजे जा रहे हैं और कुछ आ रहे हैं। वास्तव में बात थी भी ऐसी ही। माया अथवा विकारों से युद्ध के लिए ही तो ईश्वरीय सेना द्वारा यह सब कुछ हो रहा था।

जितनी सेवा की तीव्र गति की पराकाष्ठा उतनी ही प्रेम की पराकाष्ठा

एक बार की बात है कि बाबा यहाँ देहली में राजोरी गार्डन में ठहरे हुए थे। शिवरात्रि में केवल 4 या 5 दिन रहते थे। प्रातः मुरली में बाबा ने 'मनुष्य मत और ईश्वरीय मत में महान् अन्तर' की बात कही थी। क्लास के बाद बाबा बोले, ''बच्चे, मनुष्य मत और ईश्वरीय मत पर एक पुस्तक लिखकर, उसे झटपट छपवा कर सब सेवाकेन्द्रों पर भेज दो। बोलो बच्चे, कब तक छप जायेगी?''

मैंने कहा- ''बाबा, कोशिश करूँगा कि एक हफ़्ते में तैयार हो जाये।''

इस पर बाबा ने कहा- ''कोशिश नहीं और एक हफ़्ता भी नहीं; यह तो शिवरात्रि पर सबको बाँटनी होगी।''

मैंने कहा- ''बाबा, किताब कितने पृष्ठ की हो?''

बाबा बोले- ''यह आप जानो। परन्तु उसमें मनुष्य मत और ईश्वरीय मत की सभी मुख्य बातों का अन्तर आ जाना चाहिए।''

मैं सोचने लगा कि चार-पाँच ही तो दिन रहते हैं। किताब को पहले हिन्दी में लिखा जाये, फिर उसे पढ़कर कुछ सुधार किया जाये, फिर उसका अंग्रेज़ी में अनुवाद किया जाये। और, उसमें कोई महान् अन्तर का प्वाइंट भी न छूटे और उसमें मनुष्य मत तथा ईश्वरीय मत पर लिखे गये वाक्य भी लगभग बराबर-बराबर आयें ताकि किताब के आमने-सामने के पृष्ठ ठीक लगेंह्न यह सब हो और फिर प्रैस वाला भी छाप दे; और फिर सबको समय पर पहुँच भी जाये! परन्तु मन में यह भी भाव था कि बाबा ने कहा है तो होगा ज़रूर। ''हिम्मते मरदा मददे ख़ुदा।''

मैंने रात-दिन लगाकर हिन्दी में मूल लेख तैयार किया और प्रैस में ही बैठकर वहाँ अंग्रेज़ी में अनुवाद कर-कर के देता गया। भाई विश्वरतन जी भी दो-तीन रात लगातार वहीं छापेख़ाने में प्रूफ़ आदि देखते रहे। आराम और भोजन को छोड़कर हमारी और समय की दौड़ लग गयी। 64 पेज की हिन्दी और 64 पेज की अंग्रेज़ी की बड़े पृष्ठ वाली दो किताबें छपकर तैयार हो गयीं। बाबा की सहायता से सारा काम ठीक हो गया।

परन्तु कुछ फ़ाक़ा (भूखा) मस्ती से, दिनचर्या में हेर-फेर से, आराम न करने से और प्रैस में ठण्ड लग जाने से काम समाप्त होने के दूसरे दिन मुझे लगभग 104^0 बुख़ार हो गया। ईश्वरीय कार्य के बल के कारण फिर भी कुछ महसूस नहीं हुआ। एक मित्र डॉक्टर के कहने के अनुसार मैं सेवाकेन्द्र में थोड़ा आराम करने के विचार से लेट गया। मैं वहाँ अकेला ही था क्योंकि अन्य सभी बहन-भाई राजोरी गार्डन सेवाकेन्द्र पर बाबा के पास ठहरे हुए थे। **अचानक से सेवाकेन्द्र के द्वार की घंटी बजी। उठकर दरवाज़ा खोला तो यह देखकर आश्चर्य की कोई हद न रही कि भाई विश्व किशोर के साथ बाबा स्वयं आये हैं!** मालूम नहीं, बाबा को किस प्रकार से सूचना मिली थी। बाबा ने कितना प्यार किया होगा और कैसे स्नेहयुक्त शब्द बोले होंगे, वह आप समझ सकते हैं। बाबा को मिलकर मेरी सारी थकान तत्क्षण ही दूर हो गयी। मैंने सोचा, बाबा ने जितनी जल्दी छपाने के लिए की थी, उससे भी ज़्यादा जल्दी आकर इस बच्चे को प्यार देने के लिए की। छपाई के लिए तो बाबा ने चार दिन दिये थे और प्यार देने में तो बाबा ने एक दिन का वक्फ़ा (देर) भी नहीं डाला।

साहित्य कार्य में बाबा की मार्ग-प्रदर्शना

साहित्य के सम्बन्ध में बाबा से मिलने और बात करने का प्रायः जो मौका मिलता उससे ज्ञान को और अधिक समझने में मदद मिलती और बाबा के विचारों को नज़दीक से समझ पाते। जब हम लिखकर बाबा के पास ले जाते तो उसे देखकर बाबा समय-समय पर कई प्रकार के निर्देश-आदेश देते और उस लेख में परिवर्तन या परिवर्धन करते! मैंने देखा कि जहाँ-कहीं हिन्दी में 'परमपिता परमात्मा' शब्दों का और अंग्रेज़ी में 'सुप्रीम फ़ादर' (Supreme Father) शब्दों का प्रयोग होता वहाँ बाबा क्रमशः ''परम प्रिय'' और ''मोस्ट बिलवेड'' (Most Beloved) शब्द

जोड़ देते। अपने लाल अक्षरों में जब बाबा ये शब्द जोड़ रहे होते, मन में प्रेम की एक लहर दौड़ जाती। यदि मैं बाबा के सामने न बैठकर बाबा के बाज़ू की ओर बैठा होता तो बाबा लिखित पृष्ठ में ये शब्द जोड़कर मेरी ओर मुड़कर मुस्कराहट से मुझे मीठी दृष्टि देते जैसे लिखने के साथ-साथ वे प्रैक्टिकल में भी परमप्रिय का पार्ट बजा रहे हों। उस समय यह आभास होता कि देखो न, बाबा तो सचमुच परमप्रिय हैं ही।

एक बार तो मैंने यह देखा कि सारे लेख में जितनी बार भी 'परमपिता' शब्द आया था, बाबा ने उस सब जगहों पर उनके साथ 'परमप्रिय' शब्द लिख दिया। तब मैंने कहा, ''बाबा, अगर एक-दो जगह पर यह परमप्रिय शब्द आ जाये तो? क्या बार-बार इसका सब जगह प्रयोग करना ज़रूरी है? क्या यह पुनरावृत्ति (रिपिटीशन) तो नहीं लगेगी?'' तब बाबा बोले, ''बच्चे, यह तो मीठा शब्द है ना! इसे बार-बार लिखने में किसी को क्या एतराज़ है? अच्छा, यदि कभी 'परमप्रिय' न लिखो तो 'ज्ञान के सागर' या अन्य कुछ लिख दिया करो।'' इसी प्रकार, जहाँ-कहीं सतयुग या कलियुग का वर्णन आता तो बाबा कहतेह्न बच्चे, गोल्डन एज (Golden Age; स्वर्णयुग) के साथ लिखो, 100% राइटियस (righteous; नीति परायण), रिलिजियस (religious; धर्म परायण), सॉलवेण्ट (solvent; समृद्धि सम्पन्न), और इसी तरह कलियुग के साथ इनके विपरीतार्थ लिये हुए शब्द ले लिया करो। बाबा के कहने का भाव यह था कि ''100%'' शब्द और 'सालवेण्ट शब्द (कलियुग के लिए इनसालवेण्ट) भी लिखा करो। हम तो प्रायः 'रिलीजियस' और 'राइटियस' लिख देना ही काफ़ी समझते थे परन्तु बाबा ''100%'' और ''सालवेण्ट'' शब्द पर भी ज़ोर दिया करते थे। बाबा सतयुग और कलियुग के साथ इतने विशेषण प्रयोग करते कि वाक्य बहुत लम्बा हो जाता और विशेषण बहुत अधिक दिखायी देते। हाँ, उन द्वारा इन युगों के बारे में हमारा मन्तव्य तो स्पष्ट हो जाता।

मैंने एक बार बाबा से कहा, ''बाबा, आजकल लोग छोटे-छोटे वाक्य पसन्द करते हैं। ऐसे बड़े वाक्यों को समझना लोगों के लिए कठिन हो जाता है। तब बाबा बोले, ''पढ़ने वालों को इतनी समझ नहीं है क्या?'' तो मैंने कहाह्न ''बाबा, आप ही तो कहते हैं कि माया ने समझ ख़त्म कर दी है।'' बाबा बोलेह्न ''अब तो बाबा आकर समझ दे रहा है ना बच्चे! इससे तो उनकी बुद्धि का ताला ज़ोर से खुलेगा।''

चित्रों के बारे में बाबा के महत्त्वपूर्ण निर्देश

चित्र बनवाने के सिलसिले में भी बाबा से कई बार बात होती। जब श्रीलक्ष्मी और श्रीनारायण का चित्र बन रहा था तब बाबा बोले कि इसके ऊपर त्रिमूर्ति का चित्र भी होना चाहिए। त्रिमूर्ति के बिना यह चित्र किस काम का? त्रिमूर्ति के बिना तो यह चित्र भक्तिमार्ग का हो जायेगा; तब उसे छाप कर हम क्या करेंगे? त्रिमूर्ति का चित्र होने से ही हम समझा सकते हैं कि इनको ऐसा पद देने वाला अथवा राज्यभाग्य देने वाला कौन है! वरना लोग तो इन्हें ही भगवान और भगवती मानते हैं। उन्हें यह थोड़े ही मालूम है कि ये तो 'रचना' हैं और इनका 'रचयिता' तो शिव बाबा है! हमारा उद्देश्य तो उन्हीं का परिचय देना है क्योंकि ऐसी ऊँची पढ़ाई पढ़ाकर नर से नारायण बनाने वाले तो वे ही हैं। श्रीलक्ष्मी और श्रीनारायण तो हमारी पढ़ाई का लक्ष्य हैं। इस लक्ष्य को स्वयं तो कोई प्राप्त कर नहीं सकता और न ही संसार को यह पता है कि इनको ऐसी ऊँची प्राप्ति कराने वाला कौन है। अतः इनको आगे रखकर हमें इशारा तो शिव बाबा की और ही करना है क्योंकि ऊँचे से ऊँचा भगवन्त तो एक वही है। जब बाबा यह बात बता रहे थे तो समीप बैठे हुए किसी ने कहा, ''बाबा, अगर केवल शिव बाबा ही का चित्र दे दें तो कैसा रहेगा?''

इस पर बाबा ने कहा, ''शिव बाबा तो निराकार हैं, वह साकार में आये बिना थोड़े ही पढ़ाई पढ़ा सकता है? इसलिए जिस साकार तन में आकर वह पढ़ाई पढ़ाता है, उसका भी तो चित्र देना ही पड़ेगा वरना लोग क्या समझेंगे कि यह गोल-गोल निराकार बाबा कैसे पढ़ाता है? ज्ञान देने के लिए तो मुख रूपी इन्द्रिय चाहिए ना और 'ब्रह्मा के मुख से ब्राह्मण निकले और ब्राह्मण सो देवता बने और देवताओं में शिरोमणि श्रीनारायण हुए'ह्न यह तो सहज और स्पष्ट व्याख्या है। हाँ, बच्चे, अगर स्थानाभाव के कारण मजबूरी हो तब त्रिमूर्ति की बजाय शिव बाबा का चित्र डाल दो तो और बात है।''

जब अकेले शिव बाबा का अलग से चित्र छपने की बात हुई, तब बाबा बोले, ''कर्त्तव्य के चित्र के बिना अकेले नाम और रूप के इस चित्र से लोग क्या समझेंगे? यूँ तो मन्दिरों में शिवपिंडी की पूजा होती है और लोग उसे ''शिव भोलानाथ'' भी कहते हैं; परन्तु उससे वे कुछ समझते थोड़े ही हैं कि ये बाबा हमारे भण्डारे कैसे भरपूर करता है और काल-कंटक कैसे दूर करता है? बच्चे, गोले सहित त्रिमूर्ति का चित्र अर्थ सहित है, युक्तियुक्त है और उसमें सारा ज्ञान समाया हुआ है परन्तु हाँ, यदि शिव बाबा के चित्र बनाने से ईश्वरीय सेवा में बच्चों के लिए सहज होता है तो भले ही बनाओ परन्तु इसके साथ शिव बाबा के कर्त्तव्य का परिचय ज़रूर देना।

ऐसी ही बात बाबा श्रीकृष्ण के चित्र के बारे में कहते। बाबा समझाते कि उसमें अनेक जन्मों की कहानी दिये बिना

वह भक्तिमार्ग का चित्र हो जाता है। परन्तु यदि ऐसे ही छापना है तो फिर ज़बानी इसकी कहानी बतानी ज़रूर है। सभी को बताना है कि यह सतयुग के प्रथम राजकुमार थे और अब यह फिर निकट भविष्य में आने वाले हैं।

ज्ञान की गरिमा और महत्ता

बाबा न केवल ज्ञान के अनमोल महावाक्य हमें सुनाते और न केवल जन-जन को ईश्वरीय सन्देश देने हेतु ख़ूब दिल खोलकर कोई-न-कोई नयी पुस्तिका अथवा चित्र छपवाते बल्कि बाबा की एक बहुत बड़ी ख़ूबी यह भी थी कि वे साक्षी होकर हम बच्चों को उन महावाक्यों अथवा चित्रों का महत्त्व प्रैक्टिकल रीति से समझाते भी। जब श्रीलक्ष्मी, श्रीनारायण का चित्र अभी छपा नहीं था बल्कि उसका केवल डिज़ाइन (Design; रूपरेखा) ही बनकर बाबा के पास आया था तब भी बाबा से जो कोई विशेष व्यक्ति मिलने आता, तब बाबा हाथ में प्वाइंटर (Pointer; संकेतक) लेकर बहुत ही रुचि से हम सभी के सामने उस चित्र की व्याख्या देते। इसी प्रकार पहले-पहले मधुबन में जब चित्रकार त्रिमूर्ति और सृष्टिचक्र का चित्र बना रहे थे तब भी बाबा ज्ञान की एक बहुत बड़ी उछल और उमंग से, उसको अनमोल मानने की भावना में स्थित होकर और स्पष्टतः ज्ञानमय और ज्ञान स्वरूप रूप से, प्रेमपूर्वक उस चित्र को समझाते। ऐसे ही देहली में जब शिव बाबा का चित्र बन रहा था तब भी बाबा शिव बाबा के बारे में रोज़-रोज़ ऐसा प्यार भरा स्पष्टीकरण देते कि आख़िर सुनने वाले की बुद्धि के कपाट खुल जाते और सुनने वाले को ऐसा आभास होता कि बस, उसे यह चित्र तो अपने पास रखना ही चाहिए। तब उसका स्वतः ही यह प्रश्न होता, "क्या यह चित्र हमें मिल सकता है? यह तो बहुत अच्छा है!" अगर उसे यह कहा जाता कि अभी यह चित्र छपा नहीं है, तब वह यह पूछता कि कब तक छप जायेगा? उसे यह बताने पर कि आठ-दस दिन में छप जायेगा, वह कहताह्न "दस चित्र मेरे लिए ज़रूर रख लेना।" जाती बार वह फिर ताकदी कर जाता कि, "देखना, कहीं चित्र ख़त्म न हो जायें" और साथ-साथ वह यह भी पूछ लेता कि "क्या ऐसी व्याख्या भी छपी हुई है?..." स्पष्ट है कि यह सब बाबा की ज्ञानमय स्थिति, रुचि, उमंग और प्यार तथा ज्ञान के महत्त्व के गहरे एहसास ही का मधुर फल या प्रभाव होता था।

ऐसे ही इलाहाबाद में कुम्भ का मेला था। बाबा ने कहा कि "एक फ़ोल्डर (Folder; चौपन्ना) छपवा लो जिसमें बताया गया हो कि पतित-पावनी जल की गंगा नहीं है बल्कि परमपिता परमात्मा शिव और उससे निकली ज्ञान-गंगायें हैं।" बाबा ने लिखाह्न "बच्चे, यह फ़ोल्डर होना तो लाखों की संख्या में चाहिए परन्तु हाल-फ़िलहाल 50-60 हज़ार छपवा ही लो। दो दिन के अन्दर फ़ोल्डर छप कर तैयार हो गया और तुरन्त ही कई जगह भेज दिया गया। इधर बाबा ने अनेक सेवाकेन्द्रों पर काग़ज़ी घोड़े दौड़ाये जो यह सन्देश लेकर पहुँचे कि इसमें ख़ूब ईश्वरीय सेवा की जाये और उस द्वारा होने वाली सर्विस के बारे में बाबा ने ऐसी प्रेरणा भरी कि सभी सोचते, हम भी निमित्त बनकर किसी-न-किसी कुम्भकरण को जगायें। बाबा के शब्द ही ऐसे होते कि बूढ़े भी उसे सुनकर ईश्वरीय सेवा के लिए जवान हो जाते और म्याऊँ-म्याऊँ करने वाले मिचनू भी हाथ में शिव बाबा का झंडा मज़बूती से थाम लेते।

उन दिनों अभी-अभी टेप मशीन का प्रयोग होना शुरू हुआ था तो बाबा साक्षी होकर हरेक को यह राय देते कि आपस में मिलकर एक टेप मशीन ले लो; टेप पर ही मुरली सुनने में बहुत मज़ा आयेगा। **बाबा की बातों से ही ऐसा लगता कि बाबा अपने मुख से निकली आवाज़ को अपनी आवाज़ नहीं समझते थे बल्कि वे उन्हें शिव बाबा के ही महावाक्य मानते थे। इसलिए बाबा के सामने जो आता, बाबा उससे पूछते, "बच्ची, आज बाबा की मुरली सुनी? जाओ, पहले टेप सुनो फिर बाबा से मिलना। बच्ची, आज बाबा ने बहुत नयी-नयी प्वाइंट्स सुनायी हैं, बहुत ख़ज़ाना दिया है।"**

कई बार ऐसा होता कि बाबा कहते, "बच्चे, सुना आज बाबा ने क्या कहा? कितनी गुह्य बातें बतायीं! यह बाप और बच्चों का सेमीनार (Seminar; चर्चागोष्ठी) सुना? यह बातें तो और कोई बताता नहीं है। हम और तुम पहले इन बातों को जानते थोड़े ही थे? हम और तुम तो सभी भुट्टू थे; वह बाप ही आकर यह बुद्धि दे रहा है।" इस प्रकार, वह कैसा अनोखा समय होता कि अभी एक क्षण पहले हम शिव बाबा के महावचन सुन रहे होते और दूसरे ही क्षण उसी मुख से ब्रह्मा बाबा द्वारा एक वत्स अथवा विद्यार्थी के रूप में शिव बाबा के महावाक्यों की महिमा सुन रहे होते।

खेलते समय भी ज्ञान के बोल

ज्ञान सागर शिव बाबा के संग में ब्रह्मा बाबा भी ज्ञान स्वरूप ही हो गये थे। ज्ञान अब उनसे कोई अलग नहीं था बल्कि वह उनका स्वभाव, स्वरूप अथवा नेचर (Nature) बन गया था। ज्ञान-रहित कोई शब्द बाबा के मुख से निकलता ही नहीं था। एक दिन बाबा मेरे साथ बैडमिंटन (Badminton) खेल रहे थे। आस-पास खड़े कुछ बहन-भाई देख रहे थे। जब बाबा जीत जाते तो कहते, "इस तन में डबल सोल (दो आत्मायेंह्न ब्रह्मा बाबा और शिव बाबा) हैं न, इसलिए यह

जीत जाता है। शिव बाबा जिसके साथ है, विजय तो उसकी होगी ही।'' (इससे मुझे चेतावनी मिलती कि मुझे भी शिव बाबा को याद करते हुए और उसे अपना साथी बनाते हुए खेल खेलना चाहिए।) जब वे हार जाते तो कहते, ''बाबा तो बच्चों को सदा आगे ही रखता है। कहते हैं न लव और कुश ने राम पर विजय पायी। बच्चे कोशिश करें तो ज्ञान में भी बाबा से तीखे जा सकते हैं।''

मेरी एक आदत बन गयी थी कि जब शटल कॉक (बैडमिंटन की चिड़िया) पर मेरा राकेट (Racket) न लगता तो वह चिड़िया पृथ्वी पर गिरकर गुल खाती और उसके गुल होने (उछलने) पर मैं उसे राकेट मारकर बाबा की ओर भेज देता ताकि हार न जाऊँ। खड़े हुए लोग हँसकर कहते, ''बाबा, देखो यह क्या करता है!'' इस पर बाबा उत्तर देते, ''बच्ची, गिरते हुओं को उठाना ही तो हमारी सेवा है। बच्चे ने उठा दिया तो क्या बुरा किया?'' इन सभी बातों से ऐसा प्रतीत होता जैसेकि किसी कवि ने कहा है, ''घट में जल है, जल में घट है, बाहर-भीतर पानी''। ऐसे ही बाबा और ज्ञान ओत-प्रोत अथवा अभिन्न थे।

धारणा स्वरूप

जैसे मिश्री मिठास स्वरूप होती है, बाबा भी वैसे ही ज्ञान स्वरूप तो थे ही, साथ-साथ वह धारणा का भी स्वरूप थे। वे धारणा की जो बातें हमें समझाते थे, उनका अपना जीवन उनकी चेतन झाँकी था। इसलिए यद्यपि कभी-कभी बाबा मॉडल (Model; प्रतिकृति) बनवाने के लिए कहते भी तथा कई बार वे यह भी कहते, ''बच्चे, मॉडल क्या करोगे? स्वयं ही दर्शनीय मूर्त, चेतन माडल बनो।'' कभी-कभी ऐसी उग्र परिस्थिति होती, जनता का ऐसा कड़ा विरोध होता, उपद्रवी लोग ऐसा उपद्रव करते कि किसी-किसी के मन में यह प्रश्न उठ जाता कि अब क्या होगा? जिनके साथ ऐसी घटनायें बीततीं, उनके चेहरे पर कभी ईश्वरीय आनन्द की रेखायें फीकी भी पड़ जातीं और सोच-विचार के चिह्न नेत्रों की आकृति से प्रदर्शित होते। परन्तु वे जब बाबा को उसका लम्बा-चौड़ा वृत्तान्त लिख भेजते ताकि स्थिति का पूरा चित्रण बाबा के सम्मुख हो आये तो बाबा लिखते, ''बच्चे, नथिंग न्यू (Nothing New), यह कोई नयी बात नहीं है। यह तो असंख्य बार पुनरावृत्त हो चुकी है।'' इस प्रकार परिस्थिति की उग्रता उन्हें चिन्तित अथवा व्यथित नहीं करती बल्कि वे सदा फ़िकर से फ़ारिग रहते।

सदा योगारूढ, स्थितप्रज्ञ और आत्मनिष्ठ

इतना व्यस्त रहने पर भी बाबा के मन की तार शिव बाबा से जुटी रहती। बाबा कहते, ''बच्चे, मैं भी तो पुरुषार्थी हूँ। शिव बाबा हर समय थोड़े ही मेरे तन में रहते हैं? हर समय थोड़े ही शिव बैल पर सवारी करते होंगे? बच्चे, बाबा भी तो अपना पुरुषार्थ करता है, वरना इसका पद कैसे उच्च बनेगा? हाँ, शिव बाबा इसका तन किराये पर लेता है, गोया वह सेठ इसका लेंड लार्ड (मकान मालिक) है, इसलिए उसका भी अजूरा-इवजाना (Compensation) इसे मिल जाता है परन्तु हरेक को अपना पुरुषार्थ तो करना ही है और यह (ब्रह्मा) सारा दिन ''बाबा... बाबा...'' करता रहता है, इसलिए इसके लिए थोड़ा सहज है और उस बाबा का हो जाने से यह फ़िकर से फ़ारिग है तो बुद्धि और कहीं जाती नहीं है, बाबा ही में जाती है। आप बच्चों की बुद्धि कई लफ़रों में लटकी रहती है तो आपको कुछ मुश्किल हो सकता है; परन्तु वास्तव में आप बच्चों को अधिक सहज होना चाहिए क्योंकि आप तो फ़िकर से फ़ारिग हैं, अपनी ज़िम्मेदारी तो अब आपने बाबा को दे दी है न? हाँ, बाबा को सभी बच्चों का ओना (ख़याल) रहता है; बाबा का सोच (विचार) चलता है कि बच्चों की आगे-आगे उन्नति कैसे हो और नयों-नयों को यह ईश्वरीय सन्देश कैसे मिले। इसलिए मुश्किल तो बाबा को होनी चहिए।

परन्तु प्रैक्टिकल में देखते थे कि बाबा से जो भी बच्चे मिलते, उन्हें आगे बढ़ाने के लिए बाबा निराकार बाबा का माध्यम बन जाते और स्वयं भी योगारूढ, स्थितप्रज्ञ, आत्मनिष्ठ, उच्च भूमिका में रहते, तभी तो उनके पास बैठकर सभी शान्ति, आत्मा का शरीर से न्यारापन, प्रेम, कल्याण-कामना इत्यादि का अनुभव कर जाते। ऐसे थे हमारे और विश्व के बाबा!

ब्रह्मा बाबा, पवित्रता, योग एवं ज्ञान की साक्षात् मूर्ति

– भ्राता जगदीश चन्द्र

साकार अवस्था में ही पिताश्री ने न केवल वचनों द्वारा बल्कि अपने आचरणों द्वारा भी हमें यह स्पष्ट रूप से समझा दिया था कि पवित्रता एवं योग की सर्वोच्च स्थिति क्या है और उस स्थिति को कैसे प्राप्त किया जा सकता है। पिताश्री स्वयं ज्ञान, पवित्रता एवं योग की साक्षात् चैतन्य मूर्ति थे और उनके साकार जीवन में उनके सामने चाहे जैसी भी कठिन परिस्थितियाँ आयीं उनका हल करने के लिए उन्होंने सदा योगबल, पवित्रता बल और ज्ञान बल ही का प्रयोग किया; उन्होंने देह-अभिमानयुक्त तरीक़ों को महत्त्व नहीं दिया। इस विषय में यदि हम उनके चरित्र में से दृष्टान्त देने लगें अथवा उनके मुखारविन्द द्वारा उच्चारे हुए शिव बाबा के महावाक्यों को उद्धृत करने लगें तो एक बहुत बड़ा ग्रंथ बन जायेगा। परन्तु उनके इस श्रेष्ठ कार्य के सजीव रूप में आज हमारे सामने वे लाखों नर-नारियाँ और बाल-बालिकायें हैं जिन्हें उन्होंने इस संसार सागर में पवित्रता एवं योग की नौकायें बना दिया।

पिताश्री ने माया, अपवित्रता अथवा काम, क्रोध, लोभ, मोह, अहंकार तथा आलस्य के सूक्ष्म रूपों को भी बहुत अच्छी तरह से स्पष्ट किया और माया को जीत कर जगत्जीत बनने के लिए प्रैक्टिकल मार्ग-प्रदर्शना और प्रबल प्रेरणा भी दी। उन्होंने अपने कृत्यों द्वारा अपकारी के प्रति भी उपकार, घृणा करने वाले के प्रति भी प्रेम, निन्दा करने वाले के प्रति भी सेवा का ही पाठ पढ़ाया। अपनी ही सच्चरित्रता द्वारा त्याग और तपस्यामय जीवन की शिक्षा सदा उन्होंने दी। "अब घर जाना है, यह संसार एक ड्रामा है, सदा शिव बाबा को याद करते हुए ही हर कार्य करना है" ह्न यह स्मृति सदा ही उनके नयनों, वचनों तथा कार्यों से हमें मिलती थी।

अगाध ईश्वरीय प्रेम

पवित्रता पिताश्री के स्वभाव में ऐसे समायी हुई थी जैसे कि चन्दन में सुगन्धी समाई हुई होती है। शिव बाबा से उनका इतना स्नेह था कि सूर्यमुखी फूल का सूर्य से और चकोर का चाँद से भी इतना सम्बन्ध नहीं होता। वे सदा कहा करते कि "जब मैं भोजन करता हूँ तो भी ऐसा महसूस करता हूँ कि स्वयं को शिव की सजनी मानकर अपने साजन (परमात्मा शिव) के साथ ही सेवन करता हूँ, जब मैं स्नान करता हूँ तो भी ऐसा

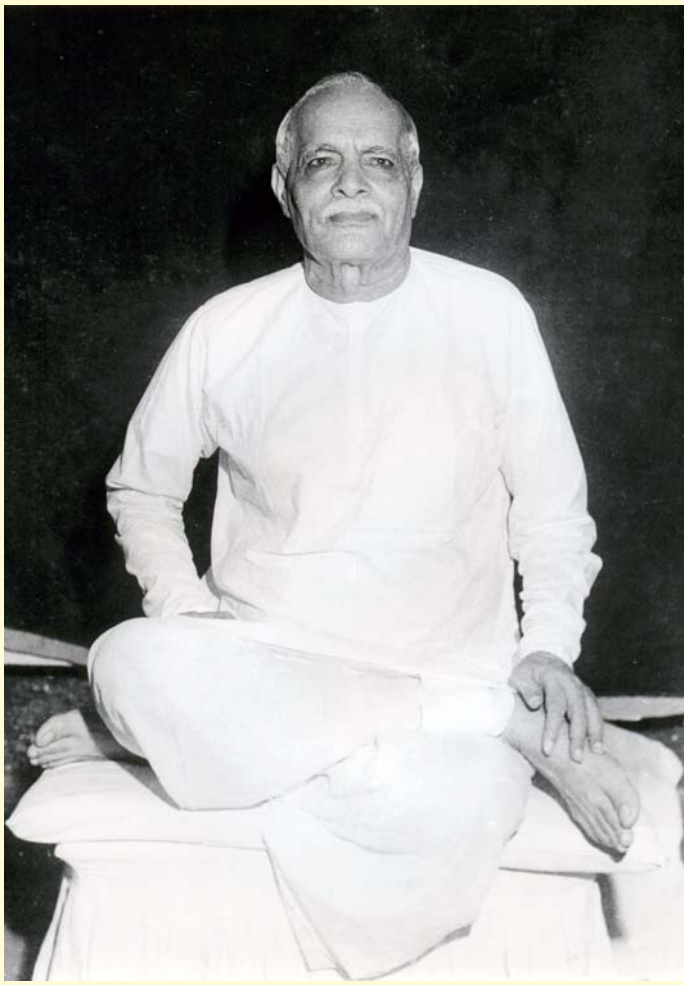

महसूस करता हूँ कि उनके 'रथ' को नहला रहा हूँ; जब सोता हूँ तो भी उनका साथ बना रहता है। मैं उनका रथ हूँ, उनके अंग-संग रहता हूँ।"

कई बार दूसरों को सिखाने के लिए जब वे क्लास में यह बताया करते कि वे शिव बाबा से कैसे बातें करते हैं तो उस समय उनके मुखारविन्द पर शिव बाबा के स्नेह की जो रेखायें उभरतीं, नेत्रों में जो प्यार झलकता और उनके शब्दों में जैसी प्रीति भरी होती, उससे कोई कठोरतम हृदय वाला व्यक्ति भी प्रेम-प्लावित हुए बिना नहीं रह सकता। सभी रोमाञ्चित हो जाते। सभी का मन प्रेम-विभोर हो उठता क्योंकि बाबा जो कुछ कह रहे होते वो उनकी हृदय की गहराई से उठता। वो ऐसा पावन स्रोत होता कि प्रत्येक के मन के मैल को धो डालता। बाबा हमेशा कहा करते कि भक्तिमार्ग में मनुष्य की यह जो इच्छा बनी रहती है कि मैं उसी (प्रभु) के संग खाऊँ, खेलूँ या

बात करूँ, वो अभी पूरी हो सकती है। इस प्रकार से बाबा सदा शिव बाबा की याद दिलाते रहते और स्वयं साकार में होते हुए भी वे सर्वदा शिव बाबा के संग में रहते; या तो शिव बाबा स्वयं ही उनके शरीर रूपी रथ में आ जाते और या पिताश्री ही मन के विमान द्वारा शिव बाबा के पास पहुँचे होते। दोनों की इस अटूट प्रीत का फल यह हुआ कि आख़िर वह दिन आया जब पिताश्री सम्पूर्णता को प्राप्त कर शिव बाबा के अंग-संग 'बाप' और 'दादा' के रूप में हर कार्य इकट्ठा ही करने लगे।

बच्चों के कल्याण के लिए ध्यान

यदि हम ध्यान से देखें तो पिताश्री का जीवन केवल 'पवित्रता और योग' की शिक्षा तक ही सीमित नहीं था बल्कि वह (उनका जीवन) बहुमुखी प्रतिभा सम्पन्न था। शिव बाबा के साथ-साथ पिताश्री ने अपने वचनों और कार्यों द्वारा जीवन के हर पहलू पर प्रकाश डाला और समाज के हर क्षेत्र में सुधार किया। समाज के नेताओं का जिस ओर आज ध्यान गया है शिव बाबा और पिताश्री ने उन-उन क्षेत्रों में बहुत काल पहले ही से वह कार्य दिव्य रीति से प्रारम्भ कर दिया था। उदाहरण के तौर पर बालकों के जीवन को ही लीजिये। पंडित जवाहरलाल नेहरु जी के जन्मदिन को 'बाल दिवस' के रूप में मनाया जाता है क्योंकि नेहरु जी बच्चों को बहुत प्यार करते थे और बच्चे भी उन्हें 'चाचा नेहरु' कहकर पुकारते थे। बच्चे तो अपने भोलेपन तथा मासूमियत के कारण सभी को प्यारे लगते ही हैं। उनकी सरलता और पवित्रता तो सभी को अपनी ओर आकर्षित करती है। परन्तु पिताश्री का उनसे विशेष स्नेह था और इसका सबूत है पिताश्री के वे कार्य जो उन्होंने बच्चों के लिए किये और उनके हार्दिक उद्‌गार जो उन्होंने बच्चों के लिए व्यक्त किये।

बच्चों के प्रति दृष्टिकोण

पिताश्री बच्चों को कोमल कलियाँ अथवा नन्हें पौधों के रूप में देखते थे और कहते थे कि इनसे बहुत कोमलता और मधुरता से व्यवहार करने की ज़रूरत है। बाबा साकार रूप में भी उन्हें 'छोटा' समझकर उनकी उपेक्षा नहीं करते थे बल्कि उन्हें बहुत महत्त्व देते थे। वे कहते थे कि छोटे बच्चों का मन साफ़ स्लेट की तरह होता है जिस पर 'ज्ञान' अच्छी तरह लिखा जा सकता है। इनके संस्कारों को अभी मोड़ना सहज है। वे कहते थे कि इन बच्चों को दिव्य साक्षात्कार भी हो सकते हैं और यदि ये सहज योग को सीख जायें तो दूसरों को भी मार्ग पर लगा सकते हैं क्योंकि ये 'पवित्र पौधे' हैं। बाबा उन्हें आत्मा की दृष्टि से देखते हुए उनके कल्याण के लिए हर कोशिश करते। माता मदालसा का उदाहरण देते हुए वे कहा करते थे कि बच्चों को ज्ञान की लोरी देनी चाहिए। बाबा उन्हें 'महात्मा' की संज्ञा देते थे और कहते थे कि छोटे बच्चे तो काम विषय-विकार के विषय में निर्दोष हैं और इस काम विकार से अपरिचित हैं। वे तो शीतलाङ्गी हैं। अतः यदि इस अवस्था में इन्हें ज्ञान दिया जाने लगे तो अच्छा होगा; इससे इनकी पवित्रता की नींव और ही सुदृढ़ हो जायेगी। इस दृष्टिकोण को लेकर इस ईश्वरीय विश्व विद्यालय में यह एक रिवाज-सा हो गया है कि यदि किसी सभा में पचास बच्चे हों तो यहाँ पर कहा जाता है कि आज की सभा में 'पचास महात्मा' भी आये थे।

जैसे बाबा को बच्चों से अथाह प्यार था, वैसे ही बच्चों को भी बाबा के सम्पर्क में आने से हार्दिक प्यार हो जाता था। जब मधुबन से लौटने की घड़ी आती तो वे अपनी कोमल-कोमल भुजाओं से बाबा को लिपट जाते और उन्हें किसी भी कीमत पर छोड़ने को तैयार न होते। इधर बस छूटने का समय आ पहुँचता और उनके माता-पिता इस फ़िकर में होते कि कहीं बस न छूट जाये। परन्तु बच्चे उन्हें कह दिया करते कि "आप भले ही चले जायें, हम तो यहीं बाबा के पास रहेंगे।" आँखों में आँसू भरकर, भोली-सी सूरत से बाबा की ओर देखते और अपने पाँवों को पृथ्वी पर मारते हुए फ़ैसला दे देते कि "हम तो उस नरक की दुनिया में अब बिल्कुल नहीं जायेंगे।" ऐसा भी नहीं कि बच्चे केवल बाबा की नित्य-नयी 'टोली' के आकर्षण में अथवा उनके प्यार, दुलार और पुचकार के कारण ही धरना डाल देते बल्कि यदि आप उनसे पूछें कि 'आत्मा का क्या स्वरूप है; वह शरीर में कहाँ रहती है अथवा शिव बाबा का धाम कौन-सा है? तो वे प्रायः ठीक ही उत्तर देते। तब सोचिये तो इस पवित्र एवं सुखद पाण्डव भवन के वातावरण में जब वे दृढ़ता पूर्वक आसन जमा लेते तब उन्हें कौन हिला सकता?

आख़िर बाबा ही उन्हें अपने कोमल हस्तों से थपथपाते हुए और अलौकिक प्यार करते हुए कहते, "मीठे बच्चे, क्या बाबा की सर्विस करने नहीं जाओगे? तुम्हारे जो सहपाठी अथवा अध्यापक हैं, क्या उन्हें शिव बाबा का परिचय नहीं दोगे? तुम तो बहुत ही अच्छे हो। जब तुम उनको शिव बाबा का परिचय बताओगे और अपना अनुभव सुनाओगे और मन, वचन और कर्म से चंचलता नहीं करोगे तो तुम बड़ों से भी अधिक ज्ञान-सेवा कर सकोगे। बच्चे, आप जैसे मीठे बच्चों को भेजने के लिए तो बाबा का मन नहीं करता परन्तु अब जब बाबा यह सेवा करने आये हैं तो हम बच्चों को भी तो यह सेवा करनी ही है ना! अतः भले ही अभी आप जाओ, घर में प्रतिदिन योग लगाओ और अपने आचरण से माता-पिता व पड़ोसियों को

प्रभावित करो जिससे कि तुम्हारे माता-पिता अपने पत्र में तुम्हें सर्टिफिकेट (प्रमाण पत्र) दें और फिर तुम बहुत-से बच्चों को अपने समान बनाकर, गाड़ी भरकर, उनका पण्डा बनकर, उन्हें यहाँ ले आना।''

बाबा की ऐसी-ऐसी प्रेरणाप्रद बातें सुनकर बच्चे वहाँ से चल पड़ते और जाते-जाते भी मुड़-मुड़कर इस अलौकिक बाबा की ओर देखते और बापदादा की याद में तल्लीन से रहते। बाबा से उनकी इतनी तो प्रीत जुट जाती कि वहाँ से जाने के बाद वे बाबा को इस प्रकार के पत्र लिखा करते, ''बाबा, अब मैं अच्छा बच्चा बन गया हूँ। अब मैं बाज़ार की चीज़ें नहीं खाता और मैंने लड़ना और गुस्सा करना भी छोड़ दिया है। बाबा, जो मुझे जेब ख़र्च के लिए पैसे मिलते हैं, वो मैं गोलक में इकट्ठे करता जा रहा हूँ क्योंकि वो तो शिव बाबा की सेवा में लगाने हैं। बाबा, मेरे पत्र का उत्तर जल्दी देना...''।

इस प्रकार, बच्चों के जो संस्कार हज़ार कोशिश करने पर भी नहीं मिटते थे, वे बाबा के स्नेह में यूँ ही ठीक हो जाते थे, यहाँ तक कि स्वयं उनके माता-पिता भी जब भी कोई भूल करते तो उनके बच्चे उन्हें कहते कि देखो बाबा ने तो ऐसा करने के लिए निषेध किया था। इस प्रकार, 'छोटे मियाँ सुबहान अल्लाह' हो जाते थे।

बच्चों की उन्नति के लिए क़दम

पिताश्री ने साकार में बच्चों के कल्याण के लिए जितना परिश्रम किया उतना शायद ही आज तक किसी ने किया होगा। उन्होंने न केवल वर्णमाला को आध्यात्मिक ज्ञान की पुट दी बल्कि बच्चों के लिए ज्ञानयुक्त संवाद भी बनाये। जब इस ईश्वरीय विश्व विद्यालय की स्थापना होने लगी तो भी उन्होंने बच्चों और बच्चियों के लिए स्कूल खोले जो हर प्रकार से अनुपम थे। उनमें न केवल भाषा और गणित इत्यादि का ज्ञान कराया जाता था बल्कि बच्चों को नैतिक एवं सरल आध्यात्मिक शिक्षा

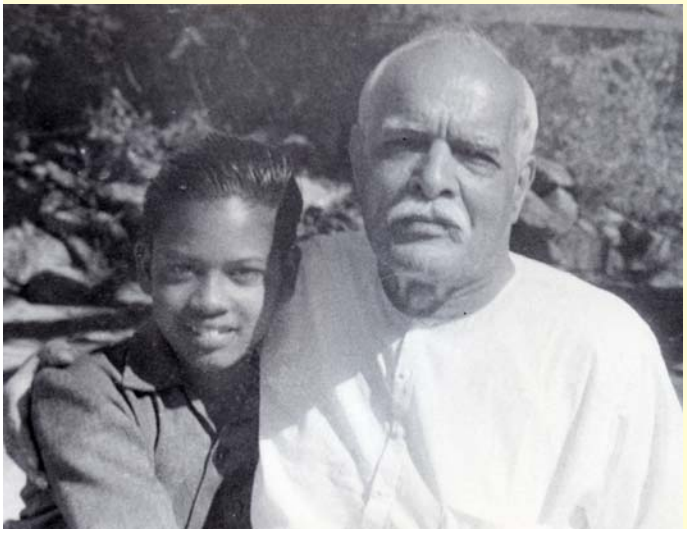

भी दी जाती थी। वहाँ बच्चों को मारना-पीटना मना था; उन्हें समझाया जाता था और उन्हें एक-दूसरे से आत्मिक नाते से व्यवहार करने की सीख दी जाती थी। उनके उठने-बैठने, खाने-पीने और बोलने-चलने, सोने-रहने के तरीक़ों में दिव्यता लायी जाती थी। कितने ही शिक्षा-विशेषज्ञों ने वहाँ स्वच्छता, शान्ति, अनुशासन, नैतिकता, सहयोग इत्यादि को देख उनकी भूरि-भूरि प्रशंसा की थी। उसमें पूर्वी और पश्चिमी पद्धतियों का समावेश था और बच्चे वहाँ एक कुल की तरह रहते थे। पढ़ाई का जीवन के साथ सम्बन्ध था और पढ़ाने वाले भी आत्म-निष्ठा के अभ्यासी तथा पवित्रता-पथ के अनुगामी थे।

महिलाओं के कल्याण के कार्य

महिलाओं को समाज में उचित मान दिये जाने, उन्हें उचित अधिकार मिलने, उनकी जागृति के लिए संगठन बनाने की ओर बाबा ने जो क़दम लिये वे अपनी प्रकार के अनूठे थे। ऐसे क़दम उससे पहले किसी ने नहीं उठाये थे। यह कहना अतिशयोक्ति नहीं होगा कि बाबा ही सबसे पहले व्यक्ति थे जिन्होंने अपना सर्वस्व कन्याओं और माताओं का एक ट्रस्ट बनाकर उनको समर्पित कर दिया। उसमें लाखों रुपये की चल और अचल सम्पत्ति थी। पिताश्री को कन्याओं-माताओं का तिरस्कार असह्य था। जब वे जवाहरात का व्यापार करते थे तब यद्यपि वे श्रीनारायण के अनन्य भक्त थे, चित्रों में दासी की तरह श्रीलक्ष्मी को विष्णु के पाँव दबाते हुए नहीं देख सकते थे। अतः वे चित्रकार को विशेषतया बुलाकर चित्र का यह भाग बदलवा देते थे। वे प्रायः विनोद भरे स्वर में कहा भी करते थे कि 'मैं चित्रकार से कहकर श्रीलक्ष्मी को इस सेवा से मुक्त करा देता था।'

सिन्ध में माताओं-कन्याओं के बन्धनमय तथा पिछड़ेपन के जीवन को देखकर बाबा के मन में सदा यह कसक बनी रहती थी कि इनका किसी तरह से सुधार और उद्धार किया जाये। वहाँ प्रायः भाई-बंद (व्यापारी वर्ग) लोग अपनी कन्या को शिक्षा के लिए नहीं भेजते थे। वहाँ बड़े-बड़े घूँघट रखने का रिवाज़ था और पुरुष वर्ग महिलाओं को अधिकतर घर की चार दीवारों में ही रखते थे। किसी के शरीर छोड़ने पर ख़ूब रोना-धोना होता था; महिलायें तो कई दिन तक ज़ोर-शोर से स्यापा (रुदन-क्रंदन; रोना-चिल्लाना) करती थीं। विधवा नारी का तो बुरा ही हाल होता था। उसके लिए तो अब उजला कपड़ा पहनना भी वर्जित था। तेल में सने हुए, मैले-से कपड़े पहन कर अब रुदन ही उसका जीवन-संगी बन जाता था। उसे लोग भाग्यहीन मानते और वैसे भी नारियों के प्रति पुरुषों का दृष्टिकोण तिरस्कारयुक्त होता था। विवाहित जीवन में खान-पान की

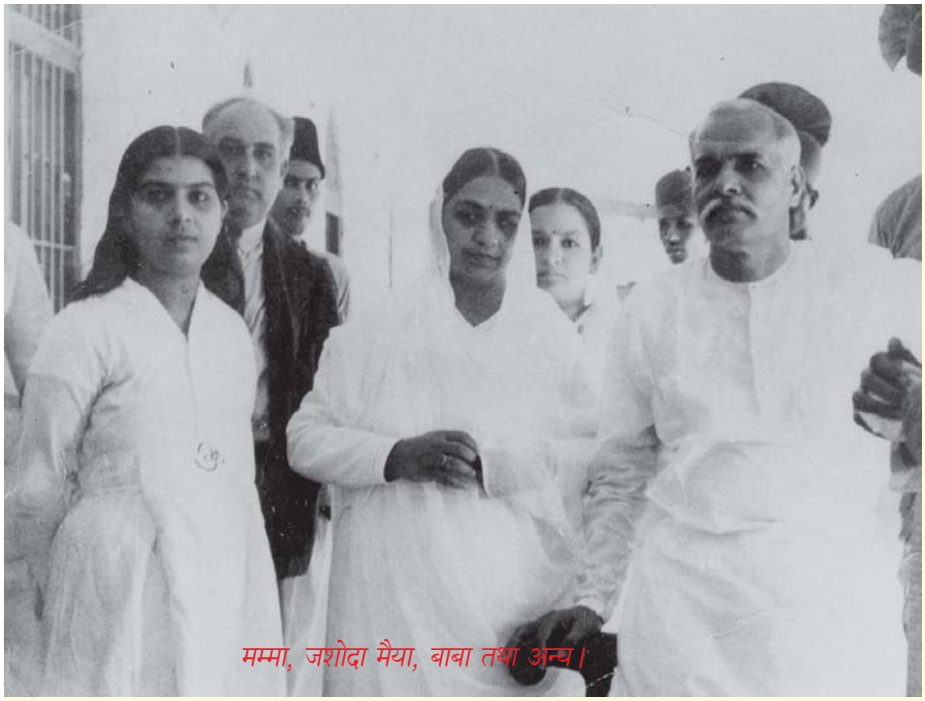

मम्मा, जशोदा मैया, बाबा तथा अन्य।

शुद्धि अब न रही थी। तामसिक पदार्थों का ख़ूब सेवन होता था। महिलायें कानों में इतनी बालियाँ व नथ डाल लेती थीं और इस फ़ैशन की होड़ में ही लगी रहती थीं। बस यही उनका जीवन था। पुरुष उन्हें भोग-विलास का साधन मानते थे और उन्हें नीची श्रेणी का जीव समझते थे। वे नारी की अकल उसके बायें पाँव की एड़ी में बताया करते थे। अब शिव बाबा और पिताश्री ने माताओं का मान बढ़ाने की ओर कार्य प्रारम्भ किया।

अब नारियों द्वारा ॐ की ध्वनि

पिताश्री के मुखारविन्द द्वारा जब शिव बाबा की ज्ञान-सरिता स्रवित हुई तब समाज का यह कल्मष धुलने लगा। जो कन्यायें-मातायें वहाँ पिताश्री के सत्संग में आतीं, वे 'ॐ' की ध्वनि किया करतीं और ज्ञान के गीतों द्वारा दूसरों को भी पवित्र जीवन का सन्देश देतीं। इस प्रकार, संन्यासी लोग वेदों की दुहाई देकर जो कहते चले आते थे कि "नारी को 'ॐ' कहने का भी अधिकार नहीं है", बाबा ने उनके इस कथन को प्रैक्टिकल रीति से मिथ्या सिद्ध कर दिया। स्वयं बाबा अपने प्रवचनों में उन्हें कहा करते कि अब आप रीड (बकरी) बनना छोड़ो और शेरनी बनो। बाबा ने उनके लिए सिलाई और पढ़ने-लिखने की भी व्यवस्था की। एक-दो बहुत बड़े भवन ही इस कार्य में लगा दिये गये ताकि इनका बौद्धिक विकास हो और साथ-साथ वे आत्म-निर्भर हो सकें। उनके लिए बाबा ने बहुत-से गीत भी बनाये जोकि वहाँ सभा में गाये जाते थे। उनमें से एक गीत ऐसा भी था जिसमें यह बताया गया था कि जो कानों में इतनी सारी बालियाँ, हाथों में इतनी सारी चूड़ियाँ रूपी कड़ियाँ और नाक में गुलामी की नथ पहने हुए हैं वे पिंजरे की मैना हैं। आज़ाद वे हैं जो फ़ैशन, बनावट व सजावट इत्यादि से मुक्त होकर सादगी, त्याग, तपस्या और आत्म-निर्भरता का जीवन अपनाते हैं। गीत का एक छोटा-सा अंश इस प्रकार था,

"अजी तुम पिंजरे की मैना, तुम पिंजरे की मैना।
तुम रोती-रिड़ती सब दिन में,हम हंसती-फिरती गुरुकुल में।
तुम निभाग की नथ पहनी है,हम सदा सुहागिन रहती हैं।"

माताओं को दुःखी देखकर, उन पर अत्याचार होते देखकर, उनका धीरज बँधाने के लिए भी कई प्रेरणादायक गीत बनाये गये थे। एक गीत का छोटा-सा अंश नीचे उद्धृत है,

"क्यों हो अधीर, माता, गुरुकुल में आ बसा हूँ
सन्ताप सख्त भारी, अबला भी देख रहा हूँ।
अधर्म दूर करने, सत्य धर्म स्थापन करने
गीता की ज्ञान-वर्षा निशि-दिन बरसा रहा हूँ।"

इस प्रकार, माताओं को बाबा न केवल आश्वासन देते और उनका धीरज बँधाते बल्कि वे उन्हें प्रेरणायें देते कि जगत की माताओ और कन्याओ, जागो और ज्ञान की ललकार करो। तुम्हारे द्वारा ही जगत का कल्याण होना है। जब माता गुरु बनेगी तब ही भारत की सन्तानों का उद्धार होगा। तुम्हारे कारण ही भारत का उत्थान रुका है। तुम केशों का शृंगार करने में लगी हो और उधर भारत माँ के लाल ज्ञान के बिना विकारों में ग्रस्त हैं, आसुरियता से संत्रस्त हैं और दुःख तथा अशान्ति में कर्राह रहे हैं। कितनी ही कन्याओं-माताओं ने उनकी इस चुनौतीपूर्ण, प्रेरणादायक ध्वनि से जागृत होकर राजऋषि अथवा राजयोगिनी के आसन को ग्रहण किया और अपने केश खोलकर, मन में अपने आप यह प्रतिज्ञा की कि अब हम अपने आपको पाँच विकारों से मुक्त करके ही दम लेंगी और भारत भूमि पर निर्विकारी स्वराज्य स्थापित करके ही रहेंगी। बाबा की उन्हीं शिक्षाओं व प्रेरणाओं का ही यह सुमधुर फल है कि आज यह इतना बड़ा शक्ति दल भारत को पवित्र बनाने में लगा है।

कन्या सौ ब्राह्मणों से उत्तम

कन्याओं का कल्याण करने के बारे

में तो बाबा का बहुत ध्यान था। बाबा कहा करते थे कि कन्या तो सब से ग़रीब होती है। क्योंकि पैतृक सम्पत्ति पर उसका कोई अधिकार नहीं माना जाता था। वे कहते थे कि कन्या की तो पहले ही से संन्यास-बुद्धि होती है क्योंकि उसके मन में यह भाव तो सदा बना ही रहता है कि आख़िर मुझे इस घर से तो एक दिन जाना ही है और उनमें नम्रता, सहनशीलता तथा संकोच इत्यादि भी होते ही हैं। अतः बाबा कहते कि ''सुशील कन्या तो सौ ब्राह्मणों से भी उत्तम है।''

यह कैसे आश्चर्य की बात है कि जहाँ आमतौर पर भारत में, घर में, कन्या का जन्म होने पर माता-पिता उदास हो जाते थे वहाँ बाबा कन्याओं के ज्ञान में प्रवेश को देश और विश्व के लिए शुभ लक्षण मानते और एक कन्या के आजीवन ब्रह्मचर्य का व्रत लेने पर वे इतने ख़ुश होते मानो कि भारत के सौ व्यक्तियों को एक नया पवित्र जीवन मिला हो। बाबा की वैसी धारणा का आधार यह था कि यदि एक कन्या ज्ञान-शक्ति, पवित्रता-शक्ति और योग-शक्ति को धारण कर शक्ति रूपा बनती है तो मानो कि सौ व्यक्तियों के मनोस्थल से आसुरियता नष्ट होती ही है। अतः **शायद पिताश्री ही संसार में साकार रूप में एक ऐसे पिता अथवा पितामह थे जो अधिक से अधिक ज्ञान-पुत्रियाँ होने से ख़ुश होते थे।** उनके लिए 'कन्या' शब्द ही पवित्रता एवं शक्ति का पर्याय था। ज्ञानयुक्त एवं सुशील कन्याओं के प्रति उनका इतना स्नेह और सम्मान होता था कि वे दिव्यतायुक्त पुरुषों के लिए भी कई बार सहसा 'हे बच्ची!' कहकर सम्बोधन करते थे।

युवा वर्ग के कल्याण का महत्त्वपूर्ण कार्य

इसी प्रकार, शिव बाबा और पिताश्री ने युवा वर्ग के लिए भी जो कार्य किया वह अपनी प्रकार का अद्वितीय ही है। अन्य लोगों ने तो युवाशक्ति को समाज के निर्माण कार्य में लगाने की ओर बहुत बाद में ही ध्यान दिया जबकि युवाशक्ति तोड़-फोड़ में लग रही थी। परन्तु शिव बाबा ने तो पिताश्री द्वारा सन् 1937 में ही यह कार्य प्रारम्भ कर दिया था। जिन लड़के और लड़कियों को लोग अनुभवशून्य, अविकसित और महान् कार्यों के अयोग्य समझते थे, पिताश्री ने उन्हीं को देश और समाज के कल्याण के निमित्त बनाया। पिताश्री हमेशा कहा करते थे कि युवा वर्ग में जो उमंग, तरंग, उत्साह, बड़ी उम्मीदें और शक्ति आधिक्य होता है, उसको यदि सही लक्ष्य और मार्ग दे दिया जाये तो उससे समाज का बड़ा कल्याण हो सकता है और यदि उसे मर्यादा और चरित्र के किनारे न दिये जायें तो वही विध्वंसात्मक कार्य कर गुजरते हैं। अतः पिताश्री ने प्रारम्भ से ही युवा वर्ग की ओर विशेष ध्यान दिया।

शिव बाबा और पिताश्री ने बुजुर्गों के अनुभव और युवा वर्ग की शक्ति को एक साथ संजो दिया और दोनों को मनुष्य से देवता बनने का लक्ष्य देकर और पवित्रता का मार्ग बताकर उनमें ऐसी तो प्रेरणा शक्ति भर दी कि वे संसार के समस्त आकर्षणों को लाँघ कर देश और संसार के नव निर्माण के कार्य में पूर्णतः जुट गये। आज उसका सुमधुर फल साफ़ दिखायी दे रहा है। युवा पीढ़ी के जो बाल-बालिकायें अथवा युवक-युवतियाँ, सामान्य रीति से अपने जीवन को खाने-पीने, पहनने और घूमने के चस्कों में गुजारते थे और धर्म, धारणाओं और संयम को बुढ़ापे की वस्तु मान कर चल रहे थे, उन्हें भी बाबा ने प्रेरणा दी। सभी इन्द्रियों के प्रलोभनों को ताक पर रखकर सादगी, सात्विकता और सेवा के जीवन को ऐसा तो अपनाया कि वे आबाल-वृद्ध हज़ारों-लाखों लोगों के सामने उदाहरण बन गये। कुछ वर्ष पहले जिन्हें समाज किसी गिनती में नहीं लेता था, आज वे भी अच्छे कार्यकर्त्ता, कुशलवक्ता, स्वरूपनिष्ठ योगी, सफल सुधारक और समाज को दिशा-निर्देश देने के कार्य में अर्पणमय, आध्यात्म-सेवी बने हैं।

जैसे कोई कुम्हार मिट्टी को लेकर उसे चाक पर चढ़ाकर, अपने कलात्मक हाथों से समाज के लिए आवश्यक, सुन्दर, प्रयोग में आने वाली वस्तुयें बना देता है, वैसा ही कार्य बाबा ने किया। कुम्हार का काम तो आसान है यद्यपि उसमें भी कला की आवश्यकता है परन्तु शिव बाबा और पिताश्री ने तो जीते-जागते, विभिन्न संस्कारों वाले, अनेक प्रकार के स्वभाव वाले, अलग-अलग परिवारों से आये हुए युवकों और युवतियों को पवित्र बना दिया। यह कार्य बहुत मुश्किल था। उन्होंने युवा पीढ़ी के लोगों को पवित्रता के चाक पर बिठाकर, ज्ञान और योग की थपथपी देकर और योग की भट्ठी में परिपक्व करके, दिव्य गुणों का रंग-रूप देकर, समाज के लिए चैतन्य एवं उपयोगी योगी वर्ग का निर्माण किया। आज इस ईश्वरीय विश्व विद्यालय व उसके सेवाकेन्द्रों का जो संचालन करने वाले हैं वे जब बाबा के सम्पर्क में आये थे तब उनमें से प्रायः बहुत-भाई युवा पीढ़ी के ही थे। आज भी इस ईश्वरीय विश्व विद्यालय के तत्त्वावधान में जो कार्यक्रम होते हैं, उनमें युवा पीढ़ी का विशेष योगदान है। स्कूलों और कॉलेजों में पढ़ने वाले अथवा दफ़्तरों और कारख़ानों में काम करने वाले, आज के दूषित वातावरण में भी स्वयं को ईश्वरीय ज्ञान और योग द्वारा पवित्र बनाते हुए, जिस प्रकार से सहयोग दे रहे हैं, उसका विवरण बहुत ही रोमाञ्चकारी और प्रेरणाप्रद है।

युवा पीढ़ी का मनोपरिवर्तक और कन्याओं-माताओं का प्रेरक

– भ्राता जगदीश चन्द्र जी

पिताश्री के जीवन का एक न्यारा और प्यारा पहलू यह भी है कि उन्होंने युवा पीढ़ी को और विशेष तौर पर कन्या वर्ग के जीवन को ज्ञान से सजाने में तथा योग द्वारा उज्वल एवं उजागर करने में काफ़ी परिश्रम किया। इसका ही फल है कि आज 'प्रजापिता ब्रह्माकुमारी ईश्वरीय विश्व विद्यालय' के अति विस्तृत कार्यक्षेत्र में प्रायः जितने भी समर्पित जीवन वाले भाई-बहनें सम्पूर्ण रूप से इसी ईश्वरीय सेवा में तत्पर हैं, वे या तो युवक और युवतियाँ ही हैं या पहले-पहले जब इस कार्यक्षेत्र में उन्होंने जीवन को जुटाया था तब वे युवा पीढ़ी के ही थे।

आज हम देखते हैं कि युवा पीढ़ी का असन्तोष (Youth Unrest) अथवा विद्यार्थियों द्वारा उग्र आन्दोलन (Students Agitation) समाज के लिए एक बहुत बड़ी समस्या बन जाती है। पिछले कुछ वर्षों में कई देशों में विद्यार्थी आन्दोलनों ने राजनीतिक क्षेत्र में भी काफ़ी उथल-पुथल की है। यह सर्वविदित है कि आज का युवक आध्यात्मिक ज्ञान में कम रुचि रखता है और फैशन, टी.वी., सिनेमा तथा नशीले और रसीले पदार्थों का सेवन उसे अधिक आकर्षित करता है। उसके स्वभाव में उग्रता और तनाव बने ही रहते हैं और रोष तथा असन्तोष समाये ही रहते हैं। अनुमान लगाया जा सकता है कि यह चीज़ समयान्तर में कितनी ख़तरनाक सिद्ध हो सकती है। अतः यदि इस पृष्ठभूमिका में देखा जाये तो समझ में आ सकता है कि पिताश्री का यह कार्य कितना महत्त्वपूर्ण है और कि उन्होंने

युवाओं, कन्याओं और माताओं के साथ बाबा

नवयुवकों और युवतियों को 'पवित्र बनो और योगी बनो' का युगपरिवर्तनकारी नारा देकर सतोगुणी, पावन एवं सुखी समाज की संस्थापना के कार्य का झण्डा उनके हाथ में थमाने का जो कार्य किया, उसमें कितनी दूरदर्शिता, नीतिप्रज्ञा एवं कल्याण-भावना भरी है!

नयी पीढ़ी, नयी दुनिया के निर्माण–कार्य में तत्पर

आज हरेक राजनीतिक पार्टी और हरेक सामाजिक एवं शैक्षणिक संस्था चाहती है कि युवा वर्ग, जिसे कि नया रक्त (new blood) कहते हैं, देश के कार्यों में अधिक ज़िम्मेवारी से भाग लें और इसके भविष्य को उज्वल बनायें। बाबा ने इस वर्ग के लोगों को आस्तिकता का अमृत पिलाकर, उन्हें योग के विधि-विधान में इतना परिपक्व कर दिया है कि आज न केवल उनकी अपनी दृष्टि, वृत्ति और स्थिति-कृति उच्च तथा अनुकरणीय हो गयी है, बल्कि इस चीज़ की चाशनी उन्हें इतनी प्रिय लग गयी है और इस सर्वोत्तम कार्य की धुन ऐसी सवार हो गयी है कि वे दूसरों के लिए भी प्रभु-प्रीति एवं पवित्रता का पथ-प्रदर्शन करने के कार्य में तथा नयी दुनिया के निर्माण में दिन दोगुनी और रात चौगुनी मेहनत कर रहे हैं।

पिताश्री कहा करते थे कि जीवन का यही समय है जब नवयुवक सही मार्ग-प्रदर्शना न मिलने के परिमाणमस्वरूप अपने जीवन को दाग लगा बैठते हैं। वे कहते थे कि विद्यार्थी जीवन यूँ तो जीवन का सर्वश्रेष्ठ भाग है क्योंकि इस काल में उनकी बुद्धि में सांसारिक कार्य-व्यापार की चिन्तायें नहीं होतीं परन्तु यदि इस जीवनकाल पर पूरा ध्यान न दिया जाये तो युवक अज्ञानान्धकार कूप एवं विकार-गर्त्त में जा गिरते

हैं। अत: पिताश्री के पास जब-कभी भी इस वय का कोई भी व्यक्ति मिलने आता तो वे ऐसा मानकर उसकी अवहेलना न करते कि अभी तो यह नवयुवक अथवा बच्चा है, अभी तो इसके खाने और मौज मनाने के ही दिन हैं, अभी तो यह जवानी की मदहोशी में क्या ज्ञान सुनेगा, बल्कि वे उसे पिता-तुल्य स्नेह देकर, उसे ईश्वरीय ज्ञान का महत्त्व दर्शाकर, उसकी बुद्धि में ज्ञान का उजाला लाकर तथा उसे प्रभु-प्रेम का प्याला पिलाकर, उसके जीवन को एक नया मोड़ दे देते। पिताश्री कहा करते कि, "नया रक्त तो सतयुग में देवी-देवताओं ही का होता है। आज तो आबाल-वृद्ध सभी का रक्त वास्तव में पुरानी पीढ़ी ही का रक्त है क्योंकि अब कलियुग का काला दौर चल रहा है परन्तु वे युवा पीढ़ी के तथा छोटे बच्चों के उद्‌बोधन-कार्य को पूर्ण महत्त्व अवश्य देते। इस प्रकार, जोश वालों को होश देकर तथा स्वभाव की गर्मी वालों को देश के गौरव और आध्यात्म की गरिमा समझा कर वे उन्हें एक नया जीवन देते और उनमें नया उल्लास भर देते।

कन्याओं में जागृति

विशेष तौर पर मातृशक्ति तथा कन्याओं को ईश्वरीय ज्ञान से जगाने का महत्त्व वे सदा सामने रखते। संसार के इतिहास में आज तक ऐसा तो एक भी व्यक्ति नहीं हुआ जिसने कि समाजोत्थान के कार्य में, जनता की आध्यात्मिक उन्नति के कार्य में अथवा एक नयी क्रान्ति में कन्याओं को विशेष रूप से सहयोगी बनाया हो। विशेष तौर पर भारतवर्ष की परम्परा तो कुछ ऐसी रही है कि किसी के यहाँ कन्या जन्म लेती है तो प्राय: माता-पिता इतने प्रसन्न नहीं होते जितना कि वे पुत्र के पैदा होने पर ख़ुश होते हैं। कन्या के जन्म लेने पर प्राय: सोचते हैं कि उसके जन्म के कारण, हज़ारों-लाखों रुपये का बोझ उनके सिर पर पड़ गया है जोकि कन्या के दहेज अथवा उसके शृंगार इत्यादि पर विवाह के समय उन्हें ख़र्च करना पड़ेगा। यहाँ महात्मा, गुरु भी सदा 'पुत्रवान भव' ही का वरदान देते हैं; 'पुत्रीवान भव' ऐसा तो कोई भी नहीं कहता। जब कन्या बड़ी होती है तब भी माता-पिता को उसके कुमारीत्व, वर्चस्व अथवा चरित्र की रक्षा और उसके लिए श्रेष्ठ वर ढूँढ़ने की चिन्ता लगी रहती है। परन्तु, पिताश्री संसार में एक मात्र ऐसे पिता हैं जिन्होंने हज़ारों कन्याओं को अपनी कन्यायें बनाया और उन्हें ऐसा चरित्रवान बना दिया कि उन (कन्याओं) के चरित्र की रक्षा की चिन्ता तो एक ओर रही, वे (कन्यायें) आज पूरी तरह नर-नारियों के चरित्रोत्थान के कार्य में सफलतापूर्वक लगी हुई हैं। जहाँ एक कन्या के लिए श्रेष्ठ वर ढूँढ़ने की चिन्ता उसके माता-पिता तथा सम्बन्धियों को सुख की नींद नहीं लेने देती वहाँ पिताश्री ने परमात्मा रूप वर के साथ, हज़ारों कन्याओं की लग्न जोड़कर उनको सही अर्थ में सौभाग्यशाली बना दिया है।

दीदी जी, दादी जी, ईशु दादी और अन्य दादियाँ नाव में खड़े हुए हैं।

बाबा ने कन्याओं को इतना महत्त्व क्यों दिया?

बाबा ने सतयुगी सृष्टि की संस्थापना के महान् कार्य में कन्याओं को सर्वोपरि स्थान दिया, यहाँ तक कि इस ईश्वरीय विश्व विद्यालय का नाम भी 'ब्रह्माकुमारी' शब्द को लिये हुए है। यूँ बाबा ने माताओं को भी बहुत मान दिया और इस कार्य में उनका भी अपने तौर पर महत्त्वपूर्ण स्थान है परन्तु इस ईश्वरीय विश्व विद्यालय में प्रवेश प्राप्त करने पर तो उन्होंने भी कुमारी-व्रत को ले लिया और इसके फलस्वरूप उन्हें भी 'ब्रह्माकुमारी' की उपाधि मिली यद्यपि वे अविवाहित कन्या की तुलना में 'अधर कन्या' कहलायीं।

प्रश्न उठता है कि बाबा ने कन्याओं को इतना महत्त्व क्यों दिया? आप देखेंगे कि यूँ तो भारत की परम्परा में कन्या को सम्मान दिया ही जाता है। यहाँ कन्या से भूल हो जाने पर भी उस पर हाथ उठाना वर्जित माना जाता रहा है। यहाँ कन्याओं को 'शक्ति-रूपा' माना जाता है और वयस्क तथा वयोवृद्ध लोग भी कन्या को 'जगत्‌माता' रूप मान कर वर्ष में एक विशेष दिन उनका चरणस्पर्श कर स्वयं को धन्य मानते हैं। इसका मूल कारण कन्या की पवित्रता है। बालकों की

अपेक्षा बालिकाओं से दृष्टि-वृत्ति की शुद्धि की अधिक आशा की जाती है क्योंकि उनमें संकोच, लज्जा इत्यादि अधिक होते हैं। अतः ब्रह्मचर्य, जोकि योग की नींव है, में कन्याओं को आशानुकूल सफलता प्राप्त होती है। इसलिए बाबा ने कन्याओं, जिन्हें कि पहले ही महान् माना जाता है, को ईश्वरीय ज्ञान, गुण एवं योग रूप शक्ति देकर सचमुच 'शक्तिरूपा' बना दिया। इस प्रकार, 'डबल' महात्मा बनने से उनका आत्म-बल, उनकी कल्याणकारी शक्ति तथा उनकी तपस्चर्या का प्रभाव लोगों पर पड़ना स्वाभाविक ही है।

पुनश्च, होश संभालने पर कन्या का मन तो अपने घर से उठा-उठा-सा रहता है क्योंकि वह जानती है कि एक दिन तो उसे यहाँ से जाना ही है, उसे अधिक समय तक या जीवन-भर के लिए तो इस घर में रहना नहीं है। घर में रहते हुए भी वह समझती है कि मेरा तो यहाँ कुछ भी नहीं, मेरे साथ तो मेरा नसीब (भाग्य) चलेगा। इसकी तुलना में कुमार समझते हैं कि घर में जो कुछ भी है यह एक दिन उन्हीं का हो जाने वाला है। उनमें स्वामीपन का भान होता है, शारीरिक बल का जो अभिमान है तथा धनोपार्जन का जो नशा है, वह अलग। कन्या बेचारी ग़रीब है, एक दिन घर छोड़कर डोली में चली जाने वाली है, इन सम्बन्धियों से बिछुड़ कर उसे न जाने कौन-से सम्बन्धी मिलेंगे? इस प्रकार, मन का उठाव, सम्बन्धों में होते हुए भी मूल रूप में उनसे थोड़ा-बहुत अलगाव, सब-कुछ घर में होते हुए भी उसमें अपनेपने की वृत्ति का अभाव, यही तो सही संन्यास के मूल तत्त्व हैं और ईश्वर-प्रेम अथवा योग की नींव हैं। इन्हीं का मार्गान्तरीकरण करके बाबा ने, सही अर्थ में कन्याओं को योगिन, तपस्विनी और त्याग वृत्ति सम्पन्न बनाया।

कन्याओं में जो स्वाभाविक तौर पर संकोच, लज्जा, नम्रता इत्यादि गुण होते हैं, उनका प्रयोग करके उन्हें प्रभु-प्रेम में जोड़ दिया और सांसारिक बुराइयों से उन्हें मोड़ दिया। जिस कुमारी वर्ग के आगे केवल रस्म के तौर पर लोग झुकते हैं, उन्हें बाबा ने सचमुच विश्ववंद्य बना दिया। उन्हें उद्बुद्ध एवं महान् बना दिया कि जिस कन्या वर्ग को कई लोग 'ॐ' शब्द के उच्चारण से तथा वेदों के अध्ययन से वञ्चित रखने की चेष्टा करते रहे हैं, उस कन्या वर्ग एवं माता जाति को बाबा ने गुरु पदवी के योग्य बना दिया, यद्यपि हम एक परमात्मा को 'गुरु' मानते हैं। आज एक ओर अहंकार एवं क्रोध से भरे हुए उत्तेजनशील वयस्क विद्वानों तथा दूसरी ओर सरलता, नम्रता, शीतलता, स्नेह और मुस्कान से युक्त इन ज्ञानमयी कन्याओं का जो स्पष्ट अन्तर है, वह देखकर कोई भी मनुष्य पिताश्री की कमाल माने बिना नहीं रह सकता।

कन्यादान

यहाँ कन्याओं का जीवन इतना उच्च बनते देखकर, उन्हें जन-जन के आध्यात्मिक कल्याण के कार्य में जुटा देखकर ही तो अनेकानेक कुटुम्बियों ने अपनी कन्याओं को इस देश-सेवा, नहीं-नहीं विश्व-सेवा के कार्य के लिए सहर्ष प्रभु-समर्पित किया। यूँ सांसारिक रीति तो यह है कि माता-पिता अथवा अभिभावक, ब्राह्मण एवं मित्र-सम्बन्धियों के सम्मुख 'वर' को ही कन्यादान करते हैं। परन्तु विश्व के इतिहास में यह एक विचित्र वार्ता देखिये कि माता-पिता ने अपनी कन्याओं को इस उत्तम सेवा के लिए समर्पित अथवा दान किया! कोई भी समझदार माता-पिता अपनी कन्या अथवा अपने पुत्र को किसी ऐसे घर में नहीं भेजना चाहते जहाँ उनका जीवन सुखी न हो या जहाँ चारित्रिक वातावरण न हो। स्पष्ट है कि सज्जन परिवारों एवं उच्च घरानों से आयी कन्याओं के माता-पिता ने इन्हें ऐसा सोच-समझकर ही सौंपा होगा कि यहाँ इनकी ईश्वरानुभूति की जन्म-जन्मान्तर की मनोकामना पूर्ण होगी, इनका आध्यात्मिक विकास पूर्णता को प्राप्त होगा और एक छोटे-से परिवार की चार दीवारों में बन्द होकर अनमोल जीवन को विषयों में बिताने की बजाय यहाँ वे हज़ारों नर-नारियों को ईश्वरीय आनन्द का प्याला पिलाने की सेवा में जीवन को सफल करेंगी। वास्तव में माता-पिता अथवा अभिभावकों ने कन्या 'समर्पित' करते समय ऐसा लिखकर दिया भी है।

पितृवत् स्नेह

फिर, कोई भी पिता जब दूसरे किसी के बच्चे को या बच्ची को अपनाते हैं (adopt करते हैं) तो वे यह बात तो जानते हैं कि 'धर्म का बच्चा' लेने वाले को बच्चे को उत्तराधिकार देना पड़ता है। वे उस बच्चे को केवल प्यार और दुलार ही नहीं देते और उनके लालन-पालन अथवा उसकी शिक्षा-रक्षा पर ही ख़र्च नहीं करते बल्कि बाद में उसे कुछ देते भी हैं। परन्तु विरले ही इतना प्यार धर्म के बच्चे को दे पाते हैं कि बच्चा अपने वास्तविक माता-पिता की अपेक्षा, गोद लेने वाले माता-पिता से अधिक घुल-मिल जाये। फिर, उस बच्चे को भी चाहे कितनी भी सम्पत्ति उत्तराधिकार के रूप में मिलती हो, वह होती तो नश्वर एवं प्रकृतिजन्य सुख देने वाली ही है। अतः यह कैसी अद्भुत बात है कि पिताश्री ने यहाँ हज़ारों कन्याओं-माताओं को अथवा कुमारों को ऐसा तो स्मरणीय एवं अथाह प्यार दिया कि उनके लिए दैहिक स्मृतियाँ ही फीकी पड़ गयीं और वे इतने अतुल ज्ञान-धन, गुण-शृंगार, योग-सौन्दर्य, चारित्रिक पूँजी के मालिक बने कि सारे कलियुगी संसार का राज्य भी उसके सामने हेय है। है कोई ऐसा व्यक्ति जिसके

बारे में सभी यही सोचें कि जितना प्यार यह हमें देता है उतना यह अन्य किसी को नहीं देता?

सभी लोग सद्बुद्धि तो भगवान ही से माँगते हैं। अतः परमपिता शिव ने पिताश्री अथवा प्रजापिता ब्रह्मा बाबा के माध्यम से, इस ईश्वरीय विश्व विद्यालय द्वारा नर-नारियों को पावन बनाने का जो कार्य प्रारम्भ किया है, उसमें माताओं तथा कन्याओं दोनों को इस लोक-सेवा में सहयोगिन बनाया है। किसी विकारी वयस्क को जब कोई कन्या कहती है कि, ''आप मेरे पिता समान हैं... आप अपने गृहस्थ में वासना-भोग करके भी अभी तृप्त नहीं हुए और मैं आपकी नन्हीं-सी पुत्री हूँ। मैंने प्रभु-प्रेम में इस काम विकार का त्याग किया है..., क्या आप इस अन्तिम जन्म के शेष थोड़े रहे हुए समय में, आत्मा को नरक में धकेलने वाले इस काम विकार को नहीं त्याग सकते?...'' तो वह उस कन्या की इस तोतली-सी बात को सुनकर लज्जित हो जाता है और अवाक् रह जाता है, नहीं, नहीं तुरन्त प्रायश्चित वृत्ति से कह उठता है कि, ''मैं आज से इस महाविकार को छोड़ रहा हूँ!'' यदि अन्य किसी व्यक्ति को माता समझाती हैह्न ''देखो, हमने तो विकारों की यह दुनिया देखी है, हाय, हाय यह रौरव नरक है, अब हमें अथाह ख़ुशी है कि हमें प्रभु ने इससे निकाला है, आपकी शुभ-चिन्ता में हम आपकी स्नेही बहन के रूप में अपने अनुभव के आधार पर कहती हैं कि विकार दुःख का घर हैं, अब इस विष को छोड़ शेष जीवन में अमृत पियो...।'' तो वह कह उठता है कि, ''धन्य हो बहन, आपने मुझे पवित्रता का मार्ग दिखा दिया...।'' अतः देखिये तो बाबा ने युवा पीढ़ी को एवं कन्याओं-माताओं के जीवन को अध्यात्म से संजोकर कैसे उन द्वारा संसार के कल्याण के लिए एक अत्यन्त उत्तम एवं सशक्त साधन तैयार किया है!

गुणमूर्ति बाबा

– भ्राता जगदीश चन्द्र जी

बाबा का चित्र और बाबा के चरित्र जब क्रमशः हमारे बाह्य नेत्रों और अन्तर्चक्षुओं के सामने आते हैं तो मन गद्‌गद हो उठता है। मन, बुद्धि से पूछता है कि बाबा एक भव्य मूर्ति तो थे, सौम्य मूर्ति भी थे परन्तु उनमें और कौन-सा गुण मुख्य रूप से विराजमान था जो और गुणों से भी आगे बढ़कर सर्व-प्रथम अपनी छाप किसी व्यक्ति पर लगाता था! तब बुद्धि कहती है कि वास्तव में बाबा में सब गुण आपस में इस प्रकार से जुड़े थे कि वे समन्वित रूप से ही मनुष्य पर इस प्रकार प्रभाव डालते थे जिस प्रकार शहद में अनेक फूलों का रस मिलकर एक तार और एक धार हो जाता है कि अब उन्हें अलग करना कठिन होता है, तो भी शहद के बारे में यह तो कहा ही जाता है कि वो मीठी होती है। 'मधु जैसा मीठा', यह कहावत ही चली आयी है। इसी प्रकार, बाबा के सर्वगुण मनमोहक थे और वो आत्मा में मधु-जैसा मिठास भर देते थे। इसलिए ही तो बाबा जहाँ रहते उस निवास का नाम ही पड़ गया, 'मधुबन'।

बाबा के जो चरित्र एक चलचित्र के रूप में अब मानस-पटल पर एक के बाद एक आते-जाते हैं, वे सभी के सभी किसी-न-किसी दिव्य गुण का ही आलेख हैं। **बाबा का कोई हाव-भाव, उनका कोई शब्द-आलाप, उनकी कोई भाव-भंगिमा, उनके मुखमण्डल की मुस्कान, दिव्य-चरित्र की परिगणना से बाहर नहीं होते थे बल्कि वे किसी-न-किसी ईश्वरीय कर्त्तव्य की पूर्ति या किसी-न-किसी सेवा के निमित्त ही होते थे। वे नेत्रों से निहारते थे तो भी आत्माओं को कल्याण की दृष्टि से देखते हुए उन्हें ईश्वरीय प्यार से सींच देते। जिस पर बाबा की दृष्टि पड़ती वह उनकी नज़र से निहाल हो जाता, उसकी सुषुप्त आत्मा जाग उठती।** बाबा की दृष्टि ऐसी होती कि गहराइयों में डुबकी लगवाकर, उसे अभूतपूर्व शान्ति, आनन्द और प्रकाश का अनुभव करा रही हो। बाबा के नेत्रों के कोनों में, कभी किसी को देखते समय जो कुछ रेखायें उभर आतीं तो उनसे लगता कि बाबा अपार प्यार और दुलार दे रहे हैं। बाबा की उस एक नज़र से मनुष्य के शरीर का भान मिट जाता और आत्मा एक प्रकाश के समुद्र में हिलोरें लेती हुई अनुभव करती और उसके सभी मोह नष्ट हो जाते तथा उसे ऐसे मालूम होता कि उसे सब-कुछ मिल गया है। उस नैन-मुलाक़ात में आत्मा में यह भाव झंकृत हो उठते कि, ''तुम्हें पाके हमने जहाँ पा लिया है''। **बाबा का प्यार केवल 'प्यार' ही नहीं होता बल्कि वह ज्ञान, योग और सेवा को भी साथ लिये हुए होता क्योंकि जैसे ज्ञान मनुष्य के मोह को नष्ट करता है, जैसे योग मनुष्य को देह से न्यारा बनाता है, जैसे सेवा करने वाले के प्रति किसी का स्नेह जागता है वैसे ही बाबा के प्यार की एक नज़र ये सभी काम एक-साथ कर देती।** संसार में अन्य कोई हमें कभी प्यार से देखता है तो हम उसके प्यार का अनुभव तो करते हैं परन्तु उस नज़र से 'नष्टोमोह', स्मृतिलब्ध', 'गत संदेह' और 'कृषिस्येवचनंतव' (जैसे आप कहेंगे, वैसे करूँगा) के भाव पैदा नहीं होते। अतः कहना होगा कि बाबा जब प्यार करते, वे केवल प्रेममूर्त नहीं बल्कि उसके साथ-साथ ज्ञान-मूर्ति, योग-मूर्ति, सेवा-मूर्ति और कल्याण-मूर्ति भी होते और वे अपनी सूरत से भी मनुष्यों की सीरत बनाने का कमाल करते। वे हाथ उठाकर, अंगुलियों

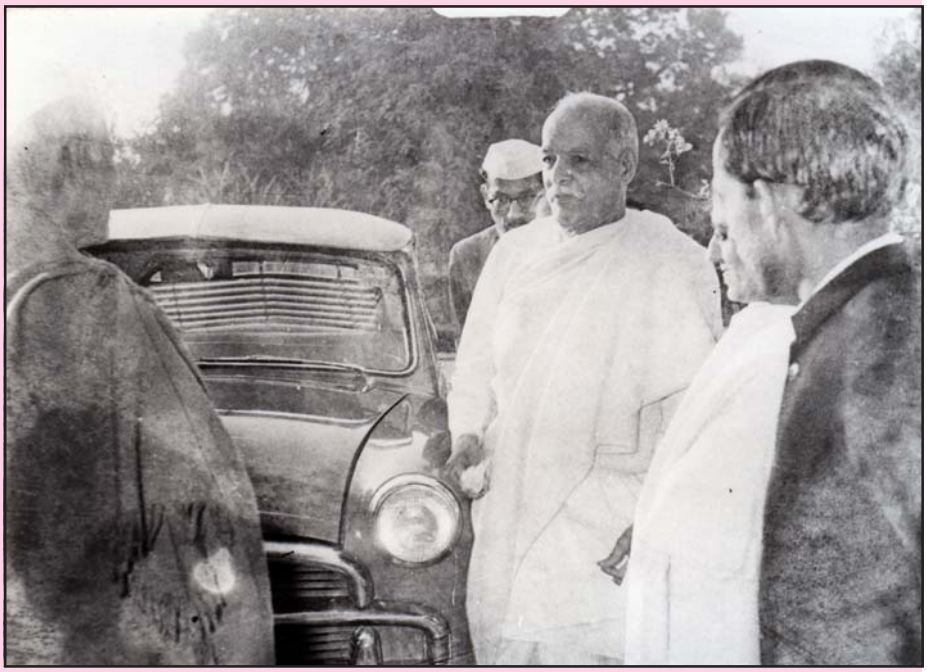

बाबा के पीछे भ्राता जगदीश चन्द्र जी खड़े हुए हैं।

को आगे से थोड़ा-सा मोड़कर, किसी दूरस्थ वत्स को अपनी ओर जब बुलाते तो वो चेहरे पर ख़ुशी की झलक लिये ऐसी तेज़ रफ़्तार से भागा आता कि कहीं देर हो जाने पर खज़ाना लुट न जाये। समीप आकर बाबा की आँखों में देखता, बाबा का हाथ अपने हाथ में ले लेता और अपना सिर बाबा के सीने पर रख देता और बाबा उसे अपनी बाँहों में भरकर दुलार देते। जिस बात के लिए बाबा ने बुलाया था, वह बात तो बाद में शुरू होती। गोया वह बाद में बाबा से पूछता कि, ''बाबा क्या सेवा है?'' परन्तु पहले तो वह बाबा की मधुर मुस्कान देखकर आत्मा के मिलन की चाह पूरी करता। यदि वह सायंकाल का समय होता तो उसके दिन-भर की थकावट उतर जाती। यदि वह प्रातः का समय होता तो उसमें कम-से-कम दिनभर के लिए एक नयी उमंग,नयी तरंग, नया उत्साह ज़्वारभाटे की तरह उभर आता कि वह उस दिन पहाड़ उठाने में भी अपने-आपको सक्षम और समर्थ समझता। जैसे सुराही मिट्टी की बनी होती है और वह गर्मी से तपे हुए दिनों में प्यास बुझाती है और ठण्डक लाती है, वैसे ही यद्यपि बाबा का शरीर पाँच तत्वों से ही गढ़ा हुआ था तथापि वह एक चुम्बकीय प्रभाव से आत्मा को अपनी ओर खींचता था और अपने स्पर्श से उसके अंगों में भी शीतलता भर देता और अंग-अंग में भी मुस्कान पैदा कर देता था।

नेष्ठी अवस्था

बाबा के जीवन की एक मुख्य विशेषता तो यह थी कि वे स्वरूपनिष्ठ थे। उन्हें शिव बाबा के अंग-संग रहने का इतना अभ्यास था कि वे दोनों शायद अलग ही न होते थे। वे जब खाना खाते, तो अपने साथ भोजन कर रहे वत्सों को कहते, ''यह देखो, यह हाथ तो इसका है परन्तु शिव बाबा इस हाथ द्वारा इस बच्चे (ब्रह्मा बाबा) को कितने प्यार से भोजन करा रहा है! यह (ब्रह्मा बाबा) शिव बाबा का मुरब्बी बच्चा है न!'' जब वे स्नान कर रहे होते और कोई उन्हें आकर कहता कि, ''बाबा ट्रंक-काल (Trunk call) आया है'', तो बाबा कहते, ''बच्चे उन्हें कह दो कि बाबा शिव पर लोटी चढ़ाकर अभी आता है'', कभी तो वे ऐसा महसूस करते कि वे नहा नहीं रहे बल्कि उनके तन में जो शिव बाबा आया है, उस पर वे जल की लोटी चढ़ा रहे हैं और कभी उन्हें ऐसा लगता कि जैसे मात-पिता किसी बच्चे को नहलाते हैं, शिव बाबा अब उन्हें नहला रहे हैं। इस प्रकार उन्हें देह की सुधि न रहती और देह से सम्बन्धित कर्मों में भी वे शिव बाबा का मनन-चिन्तन, स्मरण, गुणानुवाद, गायन आदि करते-करते काया के आभास और माया के प्रहार से परे होते गये थे और उनकी स्थिति ऐसी होती गयी थी कि जैसे देह में होते हुए भी वे न हों। उनकी निद्रा भी निद्रा नहीं रही थी बल्कि उसमें सुषुप्ति का अंश तो आटे में नमक के समान ही रह गया था; या शायद इतना भी न था क्योंकि उसमें भी वे विश्व-सेवा के स्वप्न देखते और शिव बाबा से बातें करते। उनकी इस योगारूढ, सदा जागती ज्योति के समान अवस्था का सुफल यह था कि **जब कोई भी उनके निकट आकर बैठता तो उनकी योग-दीपशिखा उस व्यक्ति की ज्योति को भी जगा देती। कोई उनकी आँखों में देख लेता तो वह इस दुनिया से कहीं दूर एक सूक्ष्म सुखमय लोक में पहुँच जाता। कोई भी पुरुषार्थ किये बिना, वह एक पंख के समान हल्कापन अनुभव करता; कम-से-कम उतने समय के लिए तो उसमें देह और सन्देह का भाव मिट जाता। उसका पुराने-से-पुराना मनोविकार भी शान्त हो जाता और उसे एक अचिंत्य, अवर्णनीय शान्ति का अनुभव होता। यदि उसने अपने इस या पिछले किसी जन्म में कुछ भक्ति या उपासना की होती तो सहज ही उसे बाबा के मुखमण्डल पर और उसके आस-पास प्रभा-मण्डल दिखायी देता जिसे वह देखता ही रहता।** गोया बाबा की निकटता-मात्र से बिना बताये मूक स्थिति में भी यह परिचय मिल जाता कि यह बाबा क्या कर्त्तव्य करते हैं और कैसी सृष्टि स्थापन कर रहे हैं और यह भी मन में विचार आता कि ऐसी आत्म-स्थिति की अवस्था किंवा देह से न्यारेपन की स्थिति बड़ी मधुर है और सहज ही हो सकती है।

सादगी और सद्व्यहार

बाबा सादगी का एक उत्तम नमूना थे। वे एक छोटे-से कमरे में रहते थे जो पुराने ढ़ंग का था और जिसकी छत भी पक्की नहीं बनी हुई थी बल्कि टीन की चादरों से बनी हुई थी। उसी कमरे में आगन्तुक लोगों से, अतिथियों से और वत्सों से मिलते भी और उसी में पत्र भी लिखते। वहीं आकर उन्हें कोई अपने मन का हाल भी बताता, परामर्श भी करता तथा मार्ग-प्रदर्शना भी लेता। वही कमरा उनका शयनागार भी था, उनका भोजन-गृह (Dining Room) भी, उनका छोटा कार्यालय भी और मिलन-मुलाक़ात का कमरा (Drawing Room) भी। वहाँ न कोई आधुनिक प्रकार का फर्नीचर रखा रहता, न उसमें कोई गलीचा बिछा था, न वह वातानुकूलित (Air Conditioned) था और न ही वहाँ कोई डबल फ़ोम (Double Foam) पड़ा था। बल्कि एक बड़ी-सी गद्दी थी जिस पर वे स्वयं भी बैठते और कई बार वत्सों को भी बिठाकर प्यार, पुचकार और दुलार देते तथा अपने हाथों से मिष्ठान (टोली) देते। परन्तु स्वच्छता में वह कमरा अनुपम था। बिस्तर पर सफेद चादरें बिछी हुई, दीवारों पर सफ़ेद चूना हुआ, गद्दी भी सफेद वस्त्र से ढकी हुई और यहाँ तक कि कमरे की

अलमारी भी सफ़ेद रोगन से शोभायमान थी। उसमें श्वेत वस्त्रधारी बाबा के सामने जब बैठते और उनकी पावनकारी वार्ता सुनते तो मन की कालिमा भी मिट जाती, वह निर्मल तथा उज्ज्वल हो जाता। न कमरे की कोई विशेष साज-सज्जा थी और न कोई बनाव-ठनाव परन्तु उस कमरे में बैठकर सेवा-मूर्ति बाबा ने कितनी आत्माओं को एक नया जीवन प्रदान किया होगा, कितनों को प्रेरित एवं प्रोत्साहित करके माया से युद्ध जीतने के योग्य बनाया होगा और ईश्वरार्पित होने का संकल्प दिया होगा! न बाबा के तन पर कोई बनावटी शृंगार, न बाबा के कमरे में।

बाबा कहते, **''बच्चे, इस ईश्वरीय सेवा में जिस किसी ने एक पैसा भी अर्पित किया है, उसका वह पैसा भी एक लाख रुपये से अधिक मूल्यवान है और वह मनुष्यात्माओं को पावन तथा उनको शान्ति देने की सेवा के लिए है; उसे हम अपने सुख-भोग के लिए खर्च नहीं कर सकते वरना वह 'अमानत में ख्यानत' होगी।''** उन दिनों पाण्डव भवन में एक नव-भवन भी बना था जिसमें अनकानेक कमरे थे। कई वत्स बाबा से कहते, ''बाबा, अब आप उनमें से किसी कमरे में क्यों नहीं आ जाते?'' तब कभी तो बाबा कहते, ''बच्चे, अब तो इस दुनिया को भी छोड़ना है, इस कमरे की क्या बात करते हो? अब तो फ़र्श से अर्श में जाना है।'' दूसरे किसी अवसर पर वे कहते, ''बच्चे, इस दुनिया में कुछ भी नया नहीं, नया तो अब सतयुग में जाकर बनायेंगे; यह तो सारी दुनिया ही पुरानी है। बाबा ने पुराना तन लिया है, अपना योग भी पुरातन है तो कमरा भी पुराना ही ठीक है।'' -ह्नऐसा कहते हुए वे मुस्करा देते और प्यार से कहते कि ''नया मकान तो आप सर्विसएबल, सिकीलधे बच्चों के लिए प्यार से बनाया है। बाबा, प्यारे बच्चों को वहाँ रहते देखकर ख़ुश होते हैं।'' कभी बाबा यह भी कहते, ''बाप तो बच्चों को सुख देने आया है; बाप बच्चों का सदा सर्वेन्ट (सेवाधारी) होता है। तभी तो लौकिक बाप भी बच्चों को पैदा कर, उनके लिए जीवनभर कमाता है और उन्हें विरासत (Inheritance) देता है। बाप का जो-कुछ भी होता है, वह बच्चों के लिए होता है। अतः यह भी आप बच्चों ही के लिए है; यह बाप तो विश्वसेवक है न! सेवक तो सर्वेन्ट्स क्वार्टर (Servant's Quarter) में रहते हैं। नये मकान में तो मालिक रहता है और आप तो बालक सो मालिक हैं।'' इस प्रकार बाबा के त्याग, सेवा और उनकी सादगी की क्या दास्तान सुनायें!

उनका आहार अल्प, खर्च अल्पतम और उनकी सेवा अथक तथा उनके स्नेह की छाप अमिट थी। वे भद्रता, सज्जनता, आतिथ्य और सत्कार के आदर्श देवता रहे। मधुबन में आकर जो कोई भी रहता, वह चाहे किसी कारख़ाने का दैनिक वेतन पर कार्य करने वाला, अशिक्षित व्यक्ति हो और चाहे शिक्षित एवं बुद्धिजीवी, समाज का कोई विशिष्ट एवं मान्य व्यक्ति हो, बाबा का प्यार सभी के लिए पितृवत् था। वे सभी को विशेष आत्मा (V.I.P.) मानकर उनसे संभाषण करते। उन्होंने कभी किसी को व्यक्तिगत रूप से फटकार, ललकार (Challenge) या डाँट-डपट नहीं दी बल्कि वे सदा सभी से सुकोमल, सुमधुर, सद्भावना पूर्ण और सम्मान सहित शब्दों से वार्ता करते। सदा उच्च स्थिति में रहते हुए, महानता के शिखर पर बैठे हुए वे सभी को महान् बनाने की चेष्टा करते और उनके साथ मर्यादित व्यवहार, श्रेष्ठ बर्ताव, शालीन रीति-नीति और सत्कारपूर्ण विधि से बर्ताव करते। उनके मीठे बोलों, उनकी मीठी दृष्टि, उनके मधुर व्यवहार, ज्ञान की मीठी बातों और उनकी मीठी मुस्कान और 'मीठे बच्चे' कहकर पुकारने के कारण ही तो उनके निवास का नाम पड़ा, **'मधुबन-तपोवन'**

आज भी बाबा का वह कमरा सेवा के निमित्त है। उस कमरे में वही गद्दी बिछी है, वहाँ वही पलंग है परन्तु बीच की एक दीवार निकाल दी गयी है जिससे वह कमरा अब बड़ा हो गया है। बाबा ने उस कमरे में रात-दिन जो सेवा की, वह अविनाशी हो गयी। उस वायुमण्डल में त्याग, तपस्या, सेवा, सादगी, स्नेह, माधुर्य, वात्सल्य, दुलार के प्रकम्पन, स्पन्दन और सुगन्धित तरंगें अभी भी वहाँ बैठने वाली आत्माओं को प्रभावित करती हैं। बाबा का वहाँ रखा ट्रांस लाईट (Translight) आज भी सन्देश और निर्देश देता हुआ तथा स्नेह और वात्सल्य की भाव-तरंगों से तरंगित करता हुआ तथा दृष्टि लेना चाहने वालों को दृष्टि देता हुआ, पूछने वालों को प्रश्न का उत्तर और मिलना चाहने वालों से मिलन-मुलाक़ात करता हुआ प्रतीत होता है। बाबा फर्श से अर्श पर चले जाने के बाद भी अथवा व्यक्त से अव्यक्त होने के बाद भी उस कमरे में आने वालों से मिलते हैं, उनको सूक्ष्म वरदान देते हैं, उन्हें कमियाँ दूर करने की विधि बताते हैं और उन्हें वहाँ से खाली नहीं भेजते, वे उन्हें कोई-न-कोई सूक्ष्म सौगात देते हैं। कोई निकट स्थान से आता है और कोई दूर से परन्तु बाबा सूक्ष्मलोक से आकर स्नेही वत्सों से स्नेहपूर्वक मिलते हैं।

ब्रह्मा बाबा, जिन्होंने ऐसा कार्य किया जो आज तक कोई न कर सका

– भ्राता जगदीश चन्द्र जी

ब्रह्मा बाबा का साकार जीवन भी अद्वितीय विशेषताओं से भरा हुआ था। निःसन्देह, ईश्वरीय ज्ञान तो उनके मुखारविन्द से शिव बाबा ने दिया परन्तु उस ज्ञान का प्रैक्टिकल स्वरूप बनकर, उसको जीवन के साँचे में ढालकर, व्यवहार का रूप देकर उस सार-विस्तार को ब्रह्मा बाबा ने ही हमारे सम्मुख रखा। वे ज्ञान के केवल एक प्रवक्ता ही नहीं थे बल्कि जैसे मिश्री मिठास-स्वरूप होती है वैसे ही वे भी ज्ञान-स्वरूप थे। वे योग के कोई प्रचारक नहीं थे। 'योगी जीवन कैसा होना चाहिए?' ह्वह्ववे केवल इसकी व्याख्या नहीं करते थे बल्कि अपने जीवन को योगमय बनाकर दूसरों को भी योग की मस्ती में मगन करने वाले थे। वे केवल दिव्यगुणों की धारणा की आवश्यकता पर बल ही नहीं देते बल्कि उनका जीवन दिव्यगुणों का एक ताज़ा गुलदस्ता था। 'मनुष्य को अपना तन, मन, धन सेवा में लगाना चाहिए', वे केवल ऐसा कहा नहीं करते थे बल्कि उन्होंने इसे करके दिखाया। उनका हर संकल्प सेवामय था और अन्तिम श्वास तक उन्होंने सेवा ही की और वह भी ऐसी कि जैसी कोई कर नहीं सकता।

बाबा ने असम्भव को सम्भव कर दिखाया

शिव बाबा ने तो मनुष्यात्माओं को नये विश्व के निर्माण के लिए नया ज्ञान अथवा नया जीवन-दर्शन दिया परन्तु जन्म-जन्मान्तर से भूली-भटकी और दुर्बल हुई आत्माओं को उस ज्ञानामृत रस से सींचने का कर्त्तव्य ब्रह्मा बाबा ने अथक

बाबा के साथ भाऊ विश्व किशोर जी, डॉ. निर्मला बहन जी और अन्य बहन।

और अदम्य रूप से किया और इस तरह किया कि जैसा अन्य कोई नहीं कर सकता। शिव बाबा ने यह समझाया कि पवित्रता ही आत्मा का स्वधर्म है और कि कितने भी सितम ढाये जायें परन्तु इस स्वधर्म को न छोड़ना परन्तु इस पवित्रता रूपी महाव्रत में आत्माओं को क़ायम-दायम (स्थायी रूप से स्थित) करने का एक अति महान् कर्त्तव्य ब्रह्मा बाबा ने ही निभाया।

आज के दूषित कलियुगी वातावरण में जब कि सभी धर्म और सभी ग्रंथ यह कहते हैं कि स्त्री-पुरुष में वासना भोग का सम्बन्ध स्वाभाविक है, आदिकाल से चला आया है और ईश्वर-सम्मत है और राम एवं कृष्ण की भी मर्यादा के अनुकूल है, उस वातावरण में नव-विवाहित पति-पत्नी के बीच भी धर्म और आने वाले नवयुग की मर्यादा को स्थापन करना एक ऐसा कठिन मामला था जिसे ब्रह्मा बाबा ही ने हल किया। ऐसी स्थिति में जब वर और वधू के माता-पिता, सास-श्वसुर और भाई-बान्धव सब उनको पुरानी परिपाटी की पट्टी पढ़ाते तब बाबा ही की यह कमाल थी कि वे उन्हें काम-ज्वर से पीड़ित न होने देते। वे गृहस्थ की नाव में बैठी उन आत्माओं को योग का ऐसा चप्पू हाथ में दे देते कि उनकी नाव आगे सुरक्षित रूप से बढ़ती जाती। वे उन्हें ऐसा और इतना प्यार दे देते कि उन्हें प्यार का अभाव कभी भी महसूस न होता और दैहिक प्यार एक-दूसरे की ओर न खींचता। वे उन्हें ऐसे ईश्वरीय नशे का प्याला पिला देते कि जिससे उन्हें जवानी का नशा न चढ़कर रूहानी नशा चढ़ जाता। वे उन्हें लोक-कल्याण अथवा जनसेवा के कार्य में ऐसा व्यस्त कर देते कि उनकी गृहस्थ भावना सेवा-कामना में परिवर्तित हो जाती। इसका फल यह निकलता कि लोग जिस कार्य को असम्भव मानते चले आये हैं, वह ब्रह्मा बाबा की प्यार-पुचकार से, उनके पत्राचार से, उनकी प्रेरणा और उपहार से सम्भव सिद्ध हो जाता।

मुझे याद है कि आज से 61 साल वर्ष पहले (सन् 1944 में) एक कन्या और एक युवक का सम्बन्ध, जब दोनों के माता-पिता के आग्रह के परिणामस्वरूप, गृहस्थ मर्यादा में जोड़ा जाने वाला था तो बाबा ने उन्हें यह पत्र लिखकर भेजा कि वे ऐसा पवित्र दाम्पत्य (युगल) जीवन जीकर दिखायेंगे कि जिसके आगे संन्यासी भी झुक जायेंगे। इस पत्र से उन्हें ऐसी प्रबल प्रेरणा मिली, पवित्रता में ऐसा उनका मन जमा कि उन्होंने असम्भव को सम्भव कर दिखाया। केवल एक पत्र ही से नहीं, बाबा ने दो वर्षों तक उन्हें निरन्तर प्यार दिया, उन्हें सेवा का उपहार दिया, वह अन्य कोई नहीं दे सकता। उनकी तथा उन जैसे अनेकों युगलों की ज़िम्मेवारी लेकर क़दम-क़दम पर उन्हें मार्गप्रदर्शना देना, उनका उत्साह बनाये रखना, उन्हें मंज़िल की ओर आगे बढ़ाते चलना, उन्हें अनेक प्रकार के आँधी-तूफ़ानों से पार करना, उनके कुल जीवन को योग के साँचे में ढाल देना, यह कोई आसान काम नहीं है। ऐसे सैकड़ों और हज़ारों विवाहित, अविवाहित और नवविवाहित लोगों को पवित्रता के पद पर आसीन करके उन्हें लौकिक से अलौकिक बना देना एक ऐसी मेहनत का काम है कि जिसे न अन्य कोई कर सकता है और न ही कोई अपने सिर पर लेगा। एक-एक वत्स पर ब्रह्मा बाबा ने जितनी मेहनत की, जितना ध्यान दिया, जितना प्यार बरसाया और अपना जितना तन, मन, धन जुटाया, वह संसार के इतिहास में न आज तक किसी ने किया है और न कोई कर सकता है। जिन्होंने उनके इस करिश्मे को देखा है, जिनका अपना जीवन उस प्यार से सींचा गया है, केवल वे ही इस सौभाग्य की साक्षी दे सकते हैं। अन्य जो आज थोड़े समय के लिए सम्मेलनों और उत्सवों में उन वत्सों के सम्पर्क में आते हैं, जिनमें बाबा ने ज्ञान, योग, धारणा, सेवा, त्याग रूपी पंचामृत भर दिया है, वे उन वत्सों के ज्ञान या प्रेम या धारणा वा सेवा आदि से प्रभावित तो होते हैं परन्तु शायद वे इसका अन्दाज़ा नहीं लगा सकते कि ब्रह्मा बाबा ने 63 जन्मों से थकी-मांदी और गुमराह हुई आत्माओं को कैसे राह पर लगाकर, उनके विकारों की तपत बुझाकर उन्हें नयी दुनिया के नमूने बनाने की अवर्णनीय मेहनत की होगी!

बाबा का जीवन नयी ईश्वरीय रचना का नमूना था

हम ऊपर यह कह रहे थे कि बाबा का जीवन नयी ईश्वरीय रचना का नमूना था और सतोगुण की चेतन मूर्ति था तथा योगी जीवन का एक अनुकरणीय आदर्श था। जिन नेत्रों ने साकार रूप में बाबा को निहारा है, जिन वत्सों को जीवन के कुछ दिन भी उस अनुपम पितृवत् आत्मा के साथ रहने का अत्यन्त अनमोल और दुर्लभ सौभाग्य मिला है, उनके लिए बाबा की वह छवि अविस्मरणीय है। अभी देखो तो बाबा ज्ञान की गहराइयों में मन को ऐसा मगन करा रहे हैं कि सुकरात और प्लेटो जैसे दार्शनिक, न्यूटन और आइनस्टाइन जैसे वैज्ञानिक तथा कपिल और गौतम अथवा व्यास और कणाद जैसे ऋषि-मुनियों को भी मात है परन्तु थोड़े ही क्षण बाद वे सेवा के कार्यों में भी ऐसा ही तत्पर करा रहे हैं कि कर्मठ किसान, कुम्हार, लुहार और सुनार को भी मात है क्योंकि इसमें भी चित्त को लगाकर पूरी तत्परता, दक्षता और क्षमता से कार्य को सफलता तक पहुँचाने की बात वे सिखा रहे हैं। अभी देखो कि वे योग की पराकाष्ठा पर ले जाकर जीवन को आनन्द विभोर कर रहे हैं और फिर इसके बाद वे पहाड़ियों की चोटियों पर ले जाकर कुछ रमत-गमत (हास्य-विनोद) और अल्पाहार तथा मनोरंजन के भी ज्ञानयुक्त कार्यक्रम करा रहे हैं गोया आत्मा और शरीर, दोनों ही को स्वस्थ बनाये रखने के कार्य साथ-साथ चल रहे हैं। राजयोग और कर्मयोग का भी सन्तुलन बना हुआ है। विद्याध्ययन और खेल-कूद दोनों अपने-अपने समय पर किये जा रहे हैं। जीवन में सादगी और त्याग भी बना हुआ है परन्तु स्वच्छता, सभ्यता और उच्चता की झलक भी कम नहीं हुई। नम्रता और आत्म-गौरव दोनों का समन्वय बना हुआ है। क्या कहूँ, यह कि बाबा एक महाज्ञानी थे, ऐसा कहना तो गोया उनके जीवन को एकाङ्गी कहना होगा। वे जितने ज्ञानी थे, उतने योगी भी थे, उतने सेवा प्रवृत्त भी और दिव्यगुण सम्पन्न भी। उनके जीवन में ज्ञान, योग और दिव्यगुण आदि ऐसे अलग-अलग नहीं थे कि जैसे किसी मकान के अलग-अलग कमरे, अलमारी के खाने या स्कूल में पढ़ाई के अलग-अलग घण्टे (पिरियड) होते हैं बल्कि जिस समय वे ज्ञान का रमण करते, वे योग में भी स्थित होते और जिस समय वे सेवा कर रहे होते, उस समय भी वे योग से अलग नहीं होते। बल्कि ज्ञान, योग, धारणा और सेवा सब एक-साथ ही और अभिन्न तथा अविभाज्य रूप से ही उनका स्वाभाविक जीवन बन गये थे। बात अलग और ज्ञान अलग, ऐसा नहीं था बल्कि उनकी हर बात में ज्ञान समाया हुआ होता और वे ज्ञान को बात-बात में ही दे देते। योग और कर्म, दो अलग पुरुषार्थ नहीं थे बल्कि दोनों का ताना-बाना-सा हुआ होता। इस दृष्टिकोण से वे एक नमूना थे जिनके सम्पर्क में आने से शिव बाबा की सूक्ष्म बातें आजकल का मनुष्य व्यवहारिक रूप से समझ पाता। दूसरे शब्दों में उनका जीवन और व्यवहार शिव बाबा द्वारा दिये हुए ज्ञान और योग आदि का एक निरन्तर प्रैक्टिकल डिमोस्ट्रेशन (Practical Demonstration) था अर्थात् आँखों से देखा जाने वाला आचराणात्मक प्रदर्शन था। उनका कर्म और उनकी काया ब्रह्मा नाम वाली

आत्मा का तो साकार रूप थी ही परन्तु साथ-साथ वह शिव बाबा की शिक्षाओं और बतायी गयी धारणाओं का भी साकार रूप थी और वह भी ऐसे कि अब शिव बाबा और ब्रह्मा बाबा में भेद भी विलीन होता जा रहा था गोया ब्रह्मा बाबा को देखने, समझने और अनुभव करने से अव्यक्त शिव बाबा को अनुभव करना आत्माओं के लिए सहज और सुलभ साधन था। दूसरे शब्दों में यूँ कहें कि ब्रह्मा बाबा में शिव बाबा का ही दर्पण था। किसी ने यह जो कहा है कि

''दिल के आईने में है तस्वीर-ए-यार
जब ज़रा गर्दन झुकाई देख ली''

इसको बदलकर ब्रह्मा बाबा के प्रसंग में यूँ कहना ठीक होगा,

''ब्रह्मा के कर्म में है तस्वीर-ए-यार
जब ज़रा गर्दन उठाई देख ली''

बाबा जिस बात को ठीक मानते, उसे तुरन्त आचरण में उतारते

ब्रह्मा बाबा की एक विशेषता यह थी कि वे जिस बात को एक बार ठीक मानते, वह केवल मान्यता तक न रह जाती बल्कि वे उसे आचरण में उतारते। जिस बात को वे ठीक न समझते, उसे वे सहज ही और झटपट ही स्थाई रूप से छोड़ देते। अपने रूहानी पुरुषार्थ में सबसे आगे जाने में उनकी यह विशेषता विशेष रूप से साधन बनी। वे पहले अद्वैत वेदान्त को पढ़ते और सुनते रहते थे परन्तु अब जब शिव बाबा से वास्तविक ज्ञान मिलने लगा तो असत्य को छोड़ सत्य को अपनाने का कार्य उन्हें विशेष विकट नहीं लगा। इसी प्रकार, वैभवों, व्यापार और धन-दौलत के जीवन को तिलाञ्जली देकर त्याग, तपस्या और सादगी के जीवन को अपनाने के लिए भी उन्हें कोई मानसिक संघर्ष नहीं करना पड़ा। ऐसे ही गृहस्थ जीवन को पलटकर न्यारा और सबका प्यारा बनने तथा भोगी भक्त जैसे जीवन से योगी जीवन बनाने में भी उन्होंने शिव बाबा से कोई ज़्यादा मेहनत नहीं ली, न ही इसमें उनका कोई अधिक समय लगा। शिव बाबा ने जो कलियुगी रस्म-रिवाज़ या मत-मर्यादा छोड़ने तथा जो सतयुगी अथवा दैवी कला-कौशल अपनाने के लिए कहा, उन्हें कठिन या असम्भव न मानकर, कष्ट या क्लेश अनुभव न करके उसी घड़ी पालन करना शुरू कर दिया। भक्तिमार्ग में काफ़ी काल बिताते हुए वे भी परमात्मा को सर्वव्यापी मानते, मनुष्य के पुनर्जन्म को 84 लाख योनि में होने की बात को ठीक समझते और कई आताल-पाताल तथा लम्बे-लम्बे युगों की बातें सुनते-सुनाते रहते और विशेष बात यह कि मूर्ति पूजा में वे भी पक्के थे परन्तु जब उन्होंने यह सब छोड़ने का संकल्प किया तो वे झट से ही इससे हट गये और स्थूल से सूक्ष्म की ओर बढ़ गये।

अलौकिक स्नेह और सम्बन्ध देकर आत्माओं को परमात्मा की ओर ले जाने वाले बाबा

विशेष बात यह कि बाबा ने जो पितृवत्, मातृवत्, सखा समान स्नेह और प्यार दिया, उसका अपना ही एक स्थान और महत्त्व है। लौकिक सम्बन्धों से बुद्धि निकालकर अलौकिक सम्बन्ध जोड़ने के पुरुषार्थ में वे अत्यन्त सहायक सिद्ध हुए। बाबा के इस प्रैक्टिकल पार्ट का उतना ही महत्त्व है जितना कि ज्ञान, योग, धारणा इत्यादि से सम्बन्धित ईश्वरीय महावाक्यों का। साकार बाबा के माध्यम से तथा स्वयं साकार बाबा के अपने जीवन से वह प्यार न मिलता तो बेड़ा पार होना भी कठिन था। अब वह उतना कठिन नहीं है जितना उस समय था क्योंकि तब न तो मार्ग इतना प्रशस्त था, न ज्ञान इतना स्पष्ट। न योगाभ्यास इतना उच्च था, न लक्ष्य इतना प्रत्यक्ष। तब मित्रों-सम्बन्धियों और संसार भर की कटु आलोचना और पुराने मत-मतान्तरों का प्रबल प्रभाव और मोह-ममता का कड़ा जकड़ाव, पिता-पुत्र और पति-पत्नी के बीच का जमा-जुटा हुआ स्नेह-सम्बन्ध, इन सबसे सामना करते हुए आत्मा को परमात्मा की ओर ले जाने के लिए बाबा के इस अलौकिक स्नेह और सम्बन्ध का पार्ट एक अद्वितीय स्थान रखता है।

उन प्रारम्भिक दिनों में विभिन्न स्थानों, कुटुम्बों और संस्कारों वाली आत्मायें जब आकर इकट्ठी रहीं, तो बाबा ने एक स्नेह-केन्द्र का पार्ट निभाते हुए सबको मिलाने और संगठन में सहन करने, सुनियोजित (adjust) करने तथा एक नये अलौकिक परिवार के रूप में स्वयं को ढालने की आवश्यक कलायें सिखायीं। ''विश्व एक परिवार है और परमात्मा उसका पिता है तथा हम सब उसकी सन्तान''ह्न इस मान्यता की क्रियान्विति के लिए पहले इस छोटे परिवार के सदस्य के रूप में एक-दूसरे से ताल से ताल मिलाकर और मन की रास रमाकर चलना ज़रूरी था और इन सबकी प्रैक्टिकल शिक्षा देने के लिए आदर्श रूप में निमित्त बने स्वयं साकार बाबा। उन्होंने कितने बच्चों के कड़े संस्कारों को सहा परन्तु फिर भी उनसे घृणा न करके उनको प्यार दिया। अमीर और ग़रीब का भेद न करके सबको मिलाया। ऊँचे कुल या अन्य कुल के सदस्यों को एक-साथ एक-जैसा जीवन व्यतीत करना सिखाया। जब एक ऐसे अलौकिक परिवार का लघु रूप बन गया, तब एक नये वसुधैव कुटुम्बकं का विस्तृत रूप बनाने की प्रक्रिया शुरू हो गयी। ऐसे थे हमारे और सबके प्यारे बाबा जिन्होंने ऐसा कार्य किया जो आज तक कोई भी न कर सका।

अठारह जनवरी का मेरा अनोखा और अविस्मरणीय अनुभव

– दादी प्रकाशमणि जी

मम्मा, बाबा, अर्जुन दादा, दादी प्रकाशमणि जी, विश्वकिशोर भाउफ (लास्ट में)

हृदयस्पर्शी एवं अनोखी उस घड़ी के अनुभवों को, बाप समान आदरणीया दादी प्रकाशमणि जी इस प्रकार सुनाती हैं कि मीठे बाबा दादी को सदैव बेहद सेवाओं में कभी कहाँ, कभी कहाँ भेजते ही रहे। अनेक सेन्टर खोलने के निमित्त बनाया। कभी दिल्ली तो कभी मुंबई, कभी कोलकाता, तो कभी बिहार भेजते थे। विदेश में जापान आदि की भी अचानक यात्रा करायी। सदैव बाबा का यह वरदान था कि बच्ची, हर समय एवररेडी रहना। बाबा का एक इशारा आता था कि तुम्हें यहाँ से वहाँ जाना है। मैं कहती थी, जी बाबा। बाबा रोज़ बेहद सेवा की कुछ-न-कुछ प्रेरणा भी देते थे और आज्ञा भी करते थे। अठारह जनवरी से पहले मैं गामदेवी, मुंबई में रहती थी। थोड़े दिन पहले ही मुंबई से बाबा के पास पार्टी लेकर आयी थी। पार्टी लेकर चली गयी। फिर और एक छोटी पार्टी लेकर दो दिन के लिए मधुबन आयी। उस समय दीदी इलाहाबाद के कुम्भ मेले में गयी थी। चौदह जनवरी मकर संक्रान्ति पर वहाँ मेला लगता है। उस समय विशेष अर्धकुंभ मेला था। जब मैं यहाँ (मधुबन) आयी तो बाबा ने कहा, बच्ची, तुम अभी आयी हो, दो-चार दिन रुक जाना। बाबा कभी भी मुझे दो दिन से ज़्यादा नहीं रहने देते थे। कभी मैं कहती थी, बाबा, मैं चार-पाँच दिन रहूँगी तो बाबा कहते थे, क्यों, कोई सेवा नहीं है क्याह्न? क्यों यहाँ रहना हैह्न? नहीं, सेवा पर चले जाओ, बादल भरके जाओ और वहाँ बरसो। जब बाबा ने ख़ुद कहा कि दो-चार दिन रह जाओ तो मैंने कहा, जी बाबा। मैं आयी थी 14 जनवरी को और जाना था 16 जनवरी को। बाबा ने कहा, बेटी, पार्टी को जाने दो, दीदी भी नहीं है, थोड़े दिन रह जाओ। उस समय मधुबन की सारी कारोबार दीदी ही संभालती थी। बाबा हर बात में हम बच्चों को अनुभवी बनाते थे।

अठारह जनवरी की सुबह बाबा ने मुरली नहीं चलायी। सवेरे से ही बाबा का स्वास्थ्य ठीक नहीं था। यज्ञ के इतिहास में और बाबा के तपस्वी जीवन में केवल यह एक ही दिन था जब बाबा ने प्रातः की मुरली नहीं चलायी थी परन्तु वे उस दिन सर्वोच्च स्थिति में स्थित थे।

बच्ची, डॉक्टर क्या करेगा, मैं तो सुप्रीम सर्जन से बातें कर रहा हूँ

जब हमने डॉक्टर को बुलाने के लिए कहा तो बाबा ने उसी मस्ती में कहा था कि "बच्ची, डॉक्टर क्या करेगा, मैं तो सुप्रीम सर्जन से बातें कर रहा हूँ।" उसी दिन बाबा ने कहा, लाओ, आज बच्चों को पत्र लिखूँ। बाबा के हाथ में थी वह लाल कलम, जिसके सुन्दर अक्षर सभी के दिलों को खींच लेते थे। बाबा ने सभी पत्रों के उत्तर दिये। बाबा ने लिखा था, "बच्चे, सदा एक मत होकर चलना है, एक की याद में रहना है और सदा शक्तियों को आगे रखना है तब ही सेवा में सफलता होगी।" ये अन्तिम पत्र कई बच्चों ने अपने दिल में छुपा कर रख लिये थे। कितनी सौभाग्यशाली थीं वे आत्मायें जिन्हें स्वयं सृष्टि रचयिता ब्रह्मा ने अपने हस्तों से पत्र लिखे थे। दिन में बाबा अंगुली पकड़कर मुझे मधुबन का आँगन घुमाते रहे। उस समय यह ट्रेनिंग सेन्टर बन रहा था, बाबा मेरी अंगुली पकड़कर दिखा रहे थे। दिन का भोजन कर बाबा ने विश्राम भी किया। शाम के समय कोई पार्टी आयी थी, बाबा उनसे भी मिले। फिर उस दिन बाबा ने कहा, आज रात

का भोजन थोड़ा जल्दी कर देते हैं। उस दिन बाबा ने रात 7-30 बजे भोजन किया। वैसे तो रोज़ 8-30 बजे भोजन करते थे। भोजने के बाद बाबा रात्रि क्लास में भी आये। क्लास में बाबा ने शिक्षाओं भरी मधुर मुरली सुनायी।

अच्छा बच्चे, विदाई

उस दिन बाबा 8 बजे ही क्लास में आये और साकार रूप के वे अन्तिम महावाक्य तो दिल में समाने जैसे हैं। बाबा ने कहा थाह्न

''बच्चे, सिमर सिमर सुख पाओ, कलह-क्लेश मिटें सब तन के, जीवनमुक्ति पाओ।''

''बच्चे, निन्दा हमारी जो करे, मित्र हमारा सोई। तुम्हें किसी की भी निन्दा नहीं करनी और किसी से वैर विरोध भी नहीं रखना।''

इस प्रकार, याद की यात्रा पर बल देते हुए यज्ञपिता बाबा खड़े होकर गेट की ओर चले और फिर गेट पर रुक गये और बोले, ''बच्चे, निराकारी, निर्विकारी, निरहंकारी बनो। जैसे बेहद का बाप सम्पूर्ण व सदा निर्विकारी है, सदा निराकार है, निरहंकारी है वैसे ही बच्चों को भी बनना है।''

फिर उस अन्तिम घड़ी के पूर्व बाबा के मुख से ये शब्द निकले, ''अच्छा बच्चे, विदाई।'' ये शब्द बाबा ने केवल उस रात ही बोले थे, जब बाबा साकार तन से बच्चों से सदा के लिए विदाई लेने जा रहे थे। नहीं तो बाबा सदा बच्चों को गुड नाइट ही कहा करते थे। मेरा अटेंशन गया। पर बाबा ऐसा कहकर बहुत साइलेन्स में सीधे अपने कमरे में गये। बाबा बहुत साइलेंस में थे, किसी से कुछ बोले ही नहीं। सदैव बाबा मुरली के बाद गद्दी पर बैठते थे लेकिन उस दिन बाबा सीधे जाकर पलंग पर बैठ गये।

पकड़ा हुआ हाथ ढीला हुआ, मैं कहने लगी, बाबा, बाबा

अधिकतर मैं रात के समय कभी बाबा के कमरे में नहीं जाती थी। उस दिन मालूम नहीं मुझे ख्याल आया कि बाबा से गुड नाइट करूँ। अभी जो शशी बहन का नया आफिस और मेडिकल विंग का आफिस हैं वहाँ उस समय मेरा बेडरूम था। मैं बाबा के कमरे में गयी। देखा तो बाबा पलंग पर बैठा है। मुझे देखकर बाबा ने कहा, आओ बेटी, आओ। मैं संकोच कर रही थी कि अन्दर जाऊँ या न जाऊँ क्योंकि बाबा पलंग पर थे तो शायद जल्दी सोना चाहते होंगे। बाबा ने मुझे फिर बुलाया। जब बाबा ने दुबारा बुलाया तो मैंने देखा कि बाबा बहुत साइलेन्स में थे, कुछ बोले नहीं। मैं भी बाबा को देखती रही, कुछ बोली नहीं। ऐसे करते थोड़ी देर बाबा पलंग पर बैठे फिर टर्न करके पलंग से टाँगे नीचे करके सामने बैठे। मैं सामने खड़ी थी। उसी घड़ी बाबा ने मेरा हाथ पकड़ा। बाबा बैठा था, मैं खड़ी थी। हाथ पकड़ते, बाबा ने ऐसी अलौकिक दृष्टि दी जिसका मैं वर्णन नहीं कर सकती। बाबा दो-तीन सेकण्ड दृष्टि देता रहा। हाथ मेरा पकड़ा हुआ था। ऐसी दृष्टि देते रहे कि मेरे में कोई लाइट और करेंट आ रही थी। मैं बाबा को देख रही थी, बाबा मुझे लाइट ही लाइट और एक फ़रिश्ता दिखायी पड़ रहे थे। उस दृष्टि द्वारा और जो बाबा ने हाथ पकड़ा था उसमें बाबा ने अपनी सब शक्तियाँ और उत्तरदायित्व दादी को दे दिया जिसको अव्यक्त बाबा ने कहा कि सारी पॉवर्स विल कर दी थी। उस समय मुझे पता नहीं पड़ा। दृष्टि देते-देते कुछ घड़ियों में नयन बदलने लगे और मेरा पकड़ा हुआ हाथ हल्का होने लगा। हाथ पकड़ा हुआ था परन्तु ढीला हुआ था। एक सेकण्ड में इतनी साइलेन्स हुई कि एकदम डेड साइलेन्स हो गयी। मैं समझ नहीं पायी कि क्या हो गया, मुझे लग रहा था कि मैं लाइट के साथ वतन में जा रही हूँ। मैं कहने लगी, बाबा, बाबा। बाबा बोल नहीं रहे थे। मुझे समझ में नहीं आ रहा था कि क्या हो गया। बाद में पता पड़ा कि बाबा अव्यक्त हो गये। मुझे ऐसा अनुभव होने लगा था कि आलमाइटी बाबा मेरे सामने खड़ा है और साकार बाबा हमसे छिप गया है।

हमने बाबा को लिटा दिया। इतने में डॉक्टर आ गया और उसने चैक करके कहा कि बाबा अब नहीं रहे...। परन्तु मुझे ये आभास नहीं हुआ था कि बाबा चला गया। मैं यही कह रही थी कि बाबा है... सबका प्यारा बाबा है... बाबा सदा साथ रहेगा...।

बाबा ने मुझमें अथाह शक्ति भर दी थी। मैं सब जगह फोन कर रही थी। मैं कहती थीह्न ड्रामा की भावी, ड्रामा याद है, बाबा अव्यक्त हो गये। जो भी आना चाहे भले पधारे। कोई भी आँसू न बहाये, बाबा तो अभी भी हमारे साथ हैं।

बच्चे फ़िकर मत करो, बाबा तुम बच्चों के लिए ही वतन में तैयारी करने गया है

बाबा ने हाथ में हाथ देकर मेरी हिम्मत बढ़ा दी थी। मैं अडोल थी। मुझे यह संकल्प मात्र भी नहीं आ रहा था कि 'क्या हो गया' या 'अब क्या होगा'। ना मेरी दिल ही भरी, ना मेरे नयन भरे थे। मुझे पूर्ण विश्वास था कि हमारी पढ़ाई तो अन्त तक चलती रहेगी। इसके बाद 21 जनवरी का वह दिन आया जब हमने प्यारे बाबा के उस पार्थिव शरीर का अन्तिम संस्कार किया, जिसने लौकिक बाप से भी अधिक हमारी पालना की,

हमें दुलार दिया, जिसकी गोद में खेलकर हम छोटे से बड़े हुए, जिसके द्वारा हमें भगवान मिला, वरदान मिले और जिसने हममें अनेक विशेषतायें भरीं।

शाम के समय अव्यक्त बाबा का प्रथम बार सन्देशी के तन में आना हुआ। बाबा ने दीदी-दादी को यज्ञ की पूर्ण रूपेण ज़िम्मेवारी दी। बाबा ने हम दोनों के सिर पर कलश रखा। अव्यक्त बाबा ने सन्देश दिया थाह्रह्र ''बच्चे फ़िकर मत करो, बाबा तुम बच्चों के लिए ही वतन में तैयारी करने गया है। मेरा प्यारा बच्चा, मेरे पास है। बाबा ने स्वयं को गुप्त कर शक्तियों को प्रत्यक्ष करने के लिए ये पार्ट बजाया है।'' ये बोल मेरे कानों में आज भी गूँजते रहते हैं।

इस प्रकार यज्ञ रूपी जहाज में अनेक वत्सों को बिठाकर 33 वर्षों से जहाज को अनेक तूफ़ानों और विघ्नों के बीच सुरक्षित खेकर जो नाविक असीम साहस के साथ अडोलता पूर्वक चला आ रहा था, अब वह हमारे हाथों में जहाज की बागड़ोर देकर, हमारा पूर्ण सहयोगी बनने के लिए उड़कर वतन में जा बैठा।

आज भी बाबा ही यज्ञपिता है, वही अपना यज्ञ चला रहा है

मुझे यह आभास रहता है कि बाबा सदा मेरे साथ है। वही सब कुछ करा रहा है। मेरे ऊपर उसी की छत्रछाया है, वही मेरे कन्धों पर है, मेरे नयनों में है। मुझे बाबा की दिव्य प्रेरणायें प्राप्त होती हैं। हम तो उनकी भुजायें हैं, वही अपनी भुजाओं को चलाता है। कोई भी यज्ञ का बड़ा कार्य आता है तो मैं स्वयं को निमित्त समझती हूँ। मुझे कभी बोझ महसूस नहीं होता। जब कोई हमसे राय लेने आता है तो मैं तुरन्त योगयुक्त होकर बाबा से पूछ कर ही राय देती हूँ। मुझे यह भान नहीं रहता कि मैं राय दे रही हूँ। मुझे यह ख़्याल रहता है कि यज्ञ में बाबा के अनेक बच्चे आते हैं अपना अधिकार लेने, सभी बच्चे अपना अधिकार लेकर ही जायें।

*

अहो! कैसी अद्भुत थीं वे सुहावनी घड़ियाँ!

– भ्राता जगदीश चन्द्र जी

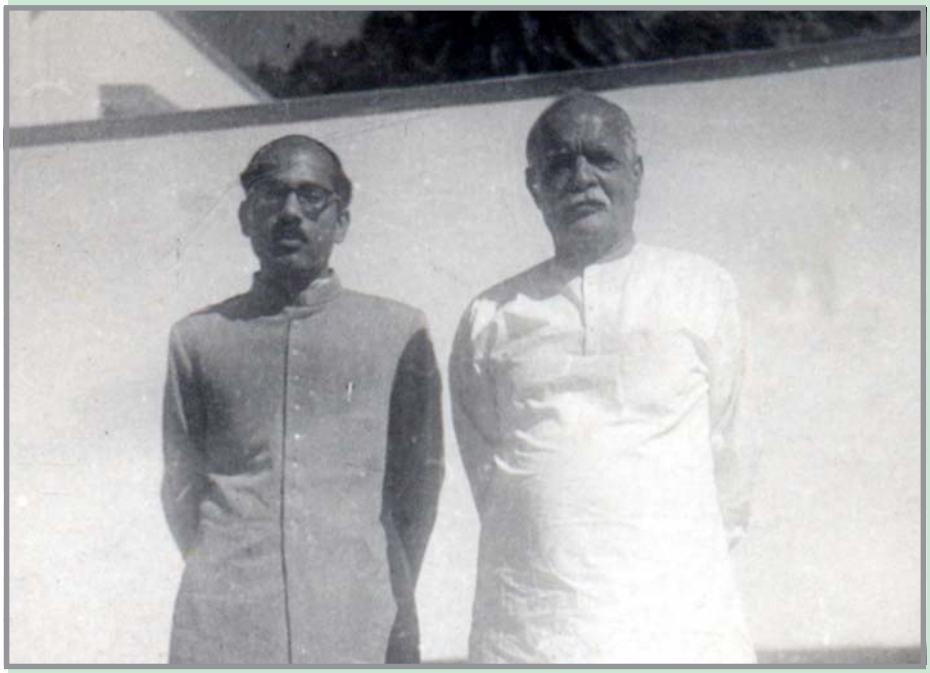

बाबा के साथ भ्राता जगदीश चन्द्र जी।

साकार बाबा के साथ जीवन की जो घड़ियाँ बीतीं, वे सभी निस्सन्देह अत्यन्त अनमोल घड़ियाँ थीं। उनके संग और सम्पर्क की वे घड़ियाँ इस आत्मा पर अमिट छाप छोड़ गयी हैं। इस ईश्वरीय ज्ञानमय जीवन के प्रारम्भ से ही बाबा की हरेक कृति को मैं अपने लिए एक कृपा मानता हूँ। मुझ प्रभु-प्यासी आत्मा को योगयुक्त करने के लिए बाबा ने क्या नहीं किया होगा? मुझ पर उनका मधुमय प्यार एक ऐसा प्यार था जो अनिर्वचनीय है। दिन हो या रात, सोने का समय हो या जागने का, उनकी कृपा-दृष्टि एक चुम्बक की तरह मुझ लोहे को अपनी ओर खींचे चली जाती थी। इसके उदाहरण स्वरूप जीवन में अनन्त घटनायें हैं जिनका उल्लेख किया जा सकता है। उनमें से दो-एक जो मेरे मन पर उभर आयी हैं, उन्हें यहाँ लिपिबद्ध कर देता हूँ,

एक अजब सरूर को लिये हुए धीरे–धीरे नीचे उतर आया

ये वृत्तान्त सन् 1953 का है। तब इस ईश्वरीय विश्व विद्यालय का मुख्यालय भरतपुर के महाराजा की 'बृजकोठी' में स्थित था। यह कोठी आज भी माउण्ट आबू में, वर्तमान बस अड्डे से कोई डेढ़ फर्लांग आबू रोड़ की ओर है। उस कोठी के एक हिस्से का नाम थाह्न 'सरदारी क्वार्टर्स'। उसके ऊपर की मंज़िल में बड़े-बड़े कमरों में बहुत बड़ी-बड़ी चारपाइयाँ ही पड़ी थीं। एक दिन की बात है कि रात्रि को बाबा उस कमरे में लेटे हुए थे और वे ईश्वरीय जीवन, ईश्वरीय ज्ञान इत्यादि की मीठी-मीठी बातें हम 5-7 उपस्थित जनों से काफ़ी देर तक बड़ी सहृदयता और बड़े वात्सल्य से करते रहे थे। उन बातों से आत्मा को बड़ा सुख अनुभव हुआ और उनको सुनते-सुनते योग में ऐसी स्थिति हुई कि मन करता था श्रीमुख से यह चर्चा होती रहे ताकि ये आत्मा आज पूर्णतः धुलकर योग की उच्चतम पराकाष्ठा का पारावार पा ले। इतने में ही जो वरिष्ठ बहनें मेरे साथ बैठी थीं, उन्होंने कहा, "जगदीश भाई, अब चलो बाबा को आराम करने दो; काफ़ी देर हो गयी है।" मैं मन मसोस कर रह गया। अपने प्रियतम के आराम में ख़लल कैसे डाल सकता था? बाबा ने मुस्कराते हुए चितवन से कमल नयनों को विशेष आभा देते हुए मेरी ओर निहारा और मैं उस चित्र को मन के फ्रेम में जड़कर वहाँ से प्रस्थान करने लगा। एक विचित्र दशा थी। मन जाना नहीं चाहता था, बुद्धि जाने का निर्णय देती थी और टाँगें इस असमंजस में थीं कि वे मन की बात मानें या बुद्धि की। लाचार चल रहा था परन्तु चलते समय भी ऐसा अनुभव होता था कि आज पाँव पृथ्वी पर नहीं हैं (छत पर भी नहीं हैं), बल्कि मैं स्वयं को प्रकाश के एक समुद्र में, विदेह अवस्था में अनुभव करता था। एक अजब सरूर को लिये हुए धीरे-धीरे नीचे उतर आया। नीचे कुछ कमरे थे जिन्हें 'धोबी क्वार्टर' कहते थे क्योंकि वहाँ दो कमरों में कपड़े प्रैस करते थे। उसके निकट ही कई ख़ाली कमरे थे। मैं उसी ओर बढ़ रहा था क्योंकि उस रात्रि को मेरे शयन की वहाँ व्यवस्था थी। जब मैं बाहर आकर चल रहा था तो चाँदनी की सफ़ेद छटा छिटक रही थी। उसने मेरी उस प्रकाशमय स्थिति को और बल दे दिया। इतने में मैं अपने कमरे तक आ पहुँचा। वहाँ आकर कुछ देर अपनी चारपाई पर इसी मस्ती में बैठा रहा क्योंकि उस स्थिति में नींद का तो नाम

ही नहीं था। आख़िर कब तक बैठा रहता? उसी कमरे में वहीं लेट गया।

अपनी आँखों और अपने कानों पर एतबार भी नहीं हो रहा था

परन्तु बाबा की वह तस्वीर भुलाये नहीं भूलती थी। उस मौन चित्र से मेरे मन में ऐसे आवाज़ आती कि, "बच्चे, ये तुम्हें विदा कर रहे हैं। तुम इन्हें जाने दो और अभी तुम भी चले जाओ, फिर मैं तुम्हारे पास आऊँगा।" बस, यही अव्यक्त आवाज़ भीतर के कानों में गूँजती रही। वही मुस्कान भीतर की आँखों के सामने आती रही और वही बन्द होंठ कुछ बोलते हुए सुनायी देते रहे और वही नयन कुछ इशारा करते हुए महसूस होते रहे। इस अजब हालत में समय गुज़रते पता भी नहीं चला परन्तु सोचने से ऐसे लगा कि तब रात्रि के 12-30 या 1-00 का समय हो गया होगा क्योंकि लगभग 11 बजे तो मैंने बाबा के यहाँ से प्रस्थान किया था। इतने में देखता क्या हूँ कि अकेले बाबा उस कमरे में मेरे सामने आ खड़े हुए हैं और प्यार से पुचकार कर कह रहे हैं, "क्यों बच्चे, नींद नहीं आ रही?" बाबा को देखकर मुझे बेहद ख़ुशी भी हुई और साथ-साथ मुझे अपनी आँखों और अपने कानों पर एतबार भी नहीं हो रहा था। मैंने थोड़ा उठने की कोशिश की कि बाबा की ओर बढ़ूँ परन्तु बाबा ही मेरे सिरहाने की ओर बढ़े और मस्तक पर हाथ रखते हुए बोले, "बच्चे, अब सो जाओ, फिर सुबह मिलेंगे।" काश, मुझे वह शिष्टाचार भी नहीं आया कि उठकर बाबा के कमरे तक साथ चला जाता परन्तु यह बाबा का ही प्रभाव था कि बस, यादों में खोये हुए मुझ पर धीरे-धीरे नींद ने अपनी चादर डाल दी। बस, इसके बाद जब प्रातः उठा तो रात का वो दृश्य फिर याद हो आया और मैंने सोचा कि हमारे बाबा, शिव बाबा के माध्यम होने से दोनों किस प्रकार हमारी याद से अपनी याद का तार जोड़े हुए हैं और किस प्रकार वह करुणाकर एक नाचीज़ बच्चे के याद करने पर उसके प्यार की डोरी से खिंचे चले आते हैं और अपने वरद् हस्तों से उसे दुलार देकर सुलाते हैं। यह सब तो अनुभव की बात है, परन्तु इससे यह भी तो स्पष्ट हुआ कि ज्ञान और प्रेम की डोरी द्वारा बाबा से याद की तार कैसे जोड़ी जा सकती है।

इसीलिए ही तो मैं जगा रहता था

इसी प्रकार के अनुभव कई बार हुआ करते थे। मैं पाण्डव भवन में पहले जब कभी भी जाया करता था तो नये भवन का कुछ हिस्सा बन जाने पर मेरे रहने की व्यवस्था प्रायः उसी कमरे में होती थी जिस कमरे में अभी निर्वैर भाई रहते हैं। सामने ही बाबा का कमरा था। रात को क्लास इत्यादि समाप्त

होने के घण्टे-दो घण्टे बाद तक भी बाबा के कमरे की लाइट जग रही होती थी। तब मैं भी प्रायः अपनी लाइट का स्विच ऑफ़ नहीं करता। बहुत बार ऐसा होता था कि बाबा लच्छू बहन, सन्देशी बहन, सन्तरी बहन या जवाहर बहन, जो उन दिनों वहाँ बाबा के साथ होती थीं, को कहते, "देखो, जगदीश के कमरे की लाइट जग रही है?" बहुधा तो जग ही रही होती थी। तो बाबा उन्हें कहते, "अच्छा, उसे बुला लाओ।" इसीलिए ही तो मैं जाग रहा होता था। जब मैं बाबा के कमरे में पहुँचता तब कई बार खड़े-खड़े ही दूसरे दिन के लिए कुछ आवश्यक निर्देश दे देते और कभी-कभी अपनी चारपाई पर बिठा देते और जिस बात के लिए बुलाया होता, वह बात भी करते रहते और कई बार साथ में लिटा कर ही ईश्वरीय बातें करते रहते।

ऐसा भी होता कि प्रातः कभी मेरी यदि ढाई बजे या तीन बजे नींद खुल जाती तो खिड़की में से झाँक लेता कि क्या बाबा के कमरे की लाइट हो रही है और मैं पाता कि प्रायः लाइट जग रही होती थी। तो मैं भी अपनी लाइट का स्विच ऑन कर

देता। शीघ्र ही बाबा के कमरे से बुलावा आ जाता। इस प्रकार, कभी 3 बजे, कभी 3-30 बजे, कभी 4 बजे एकान्त और शान्ति के समय में साकार रूप में भी बाबा से रूहरिहान करने का सौभाग्य प्राप्त होता था।

बाबा को यहाँ छोड़कर, वहाँ पाने की कोशिश की

एक बार की बात है कि मैं प्रातः जल्दी उठ गया। उस दिन स्नान भी जल्दी कर लिया। आकर अपने कमरे में बैठ सोच रहा था कि क्या ही अच्छा होता यदि मैं भी ध्यानावस्था में जाता और साक्षात्कार करता होता तो मैं देख आता कि परमधाम कैसा है, कितना विशाल है और परमधाम जाते समय मार्ग में जो सूर्य-चाँद-तारागण हैं, वे वहाँ से गुज़रते हुए कैसे दिखायी देते हैं? चलो यदि ये भी न देखता, कम-से-कम सन्देश ले जाता और ले आता और ईश्वरीय सेवा में सहयोगी तो रहता। यज्ञ के सामने कई प्रकार की समस्यायें आती हैं। बाबा मुझे इस ईश्वरीय सेवा पर भेज देते हैं। अगर मुझे दिव्य दृष्टि प्राप्त हो जाये तो मैं कठिनाई के समय बाबा से मदद तो ले सकूँगा। इतने में बाबा के कमरे से बुलावा आ गया। बुलाने वाली बहन ने पूछा, ''आपने स्नान कर लिया है?'' मैंने कहा, '' जी हाँ''। उन्होंने कहा, ''तब चलो, बाबा ने याद किया है।''

मैं बाबा के पास गया। बाबा ने अपनी चारपाई पर अपने पास मुझे लिटा दिया और सन्देशी बहन को निर्देश दिया, ''बच्ची, (शिव) बाबा के पास जाओ। बाबा को कहना, यह मेरा लाडला बच्चा है, सर्विस में अच्छा मददगार है। यदि इसे दिव्य दृष्टि प्राप्त हो जाये तो और भी अच्छी मदद कर सकता है। इसलिए बाबा को कहना कि यह बाबा ख़ुद सिफ़ारिश करता है कि अगर बाबा इस बच्चे की ध्यान की डोरी आज खींच लेंगे तो अच्छा ही होगा। अच्छा बच्ची, जाओ।'' उसको ऐसा कहने के बाद बाबा ने मेरी ओर देखा और मुझे कहने लगे, ''अच्छा बच्चे, अब बाबा को याद करो। तुम थोड़ा-थोड़ा तो जाते ही हो, क्या पता आज बाबा तुम्हें अपने पास बुला लें। अर्ज़ी हमारी, मर्ज़ी बाबा की। ऐसा कहकर बाबा मुझे मदद करने लगे और मैं भी कोशिश करने लगा कि इस शरीर से किसी तरह निकलूँ और बाबा के पास पहुँचूँ। बाबा की याद मन में लाने का पूर्ण प्रयत्न कर रहा था। वहाँ से तो गुम हो ही गया था, ऐसा अनुभव हुआ कि सूक्ष्मलोक में जा पहुँचा हूँ परन्तु वहाँ बाबा दिखायी नहीं दिये। कुछ समय के बाद मैं अव्यक्त से व्यक्त में लौट आया। इतने में सन्देशी बहन भी लौट आयी।

बाबा ने पहले उससे पूछा, ''बच्ची, यह बच्चा वहाँ पहुँचा था? बाबा ने इस बच्चे के लिए क्या कहा?'' सन्देशी खिलखिला उठीं। मैं भी यह सुनते हुए मुस्करा रहा था। सन्देशी ने कहा,

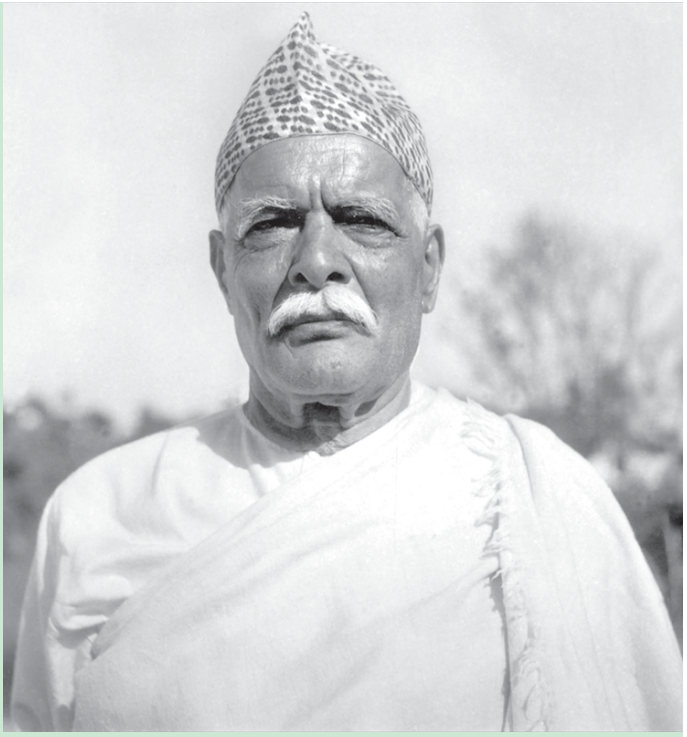

''बाबा, यह पहुँचा तो था परन्तु बाबा किधर है?, इसे यह नहीं मालूम पड़ा। फिर बाबा को मैंने आपकी बात कही तो बाबा ने कहा कि बच्चा आ तो सकता है, थोड़ा सन्देशी से सुनता रहे और हल्का हो तो ये (अव्यक्त वतन में) आ सकता है।'' तब बाबा ने मेरी ओर मुड़कर मुझे कहा, ''अच्छा बच्चे, देखो, कोशिश करना अपना फ़र्ज़ था। बाबा ने तुम्हारी अर्ज़ी तो भेज ही दी थी। भई, अब मर्ज़ी तो उस बाबा की है। दिव्यदृष्टि की चाबी तो उसके पास है। यह चाबी उसने मुझे भी नहीं दी।''

ये सब मीठी बातें सुनकर मेरे मन में बाबा के लिए बहुत प्यार उमड़ आया। मैंने यह सोचा कि देखो बाबा तक हमारे मन के भाव कैसे पहुँच जाते हैं और बाबा हमारे लिए क्या कुछ नहीं करते। उसी दिन ही बाबा ने दादी कुमारका जी को भी ध्यान में भेजने का प्रयत्न किया था। मैंने यह भी सोचा कि शायद यह मेरे ज्ञान की कमज़ोरी की ओर इशारा था क्योंकि यहाँ (व्यक्त में) मैं बाबा के पास ही तो था। उन्हें यहाँ छोड़कर वहाँ पाने की मैंने कोशिश की थी, इसलिए वहाँ बाबा से मिले बिना यहाँ लौटना पड़ा! परन्तु बाबा कितने मीठे हैं, बच्चों पर कितनी मेहनत करते हैं!

❄

बाबा तो बच्चों पर सब-कुछ लुटाने वाले थे

– भ्राता जगदीश चन्द्र जी

जब मैं पहली बार मधुबन में आया था, तब यह ईश्वरीय विश्व विद्यालय पाण्डव भवन में नहीं था, बृजकोठी में था। जिस कमरे में मैं ठहरा हुआ था उसमें और तीन-चार भाई थे क्योंकि कमरा बड़ा था। रात्रि की क्लास समाप्त होने के बाद हम लोग विश्राम करने के लिए अपने-अपने कमरे में जा रहे थे तो उतने में बाबा ने कहा, ''बच्चे, भारत के राष्ट्रपति को एक चिट्ठी लिखनी है। आप लोगों ने अनुभव किया है कि शिव बाबा निराकार, प्रजापिता ब्रह्मा के साकार तन में प्रवेश कर कैसे नयी सृष्टि की स्थापना कर रहे हैं। आप उनको निमंत्रण दो कि आप भी इसको जानकर अपना पूरा वर्सा लो। अब नहीं तो कभी नहीं। ऐसा एक पत्र उनको लिखना है अंग्रेज़ी में भी और हिन्दी में भी। उसको पढ़कर वे यहाँ आयें और बाप से मिलें और अपना जन्मसिद्ध अधिकार प्राप्त करें।'' बाबा ने यह आदेश दिया और पूछा कि कौन-कौन लिखेंगे? मैंने भी हाथ उठाया कि मैं लिखूँगा। हाथ उठाने वालों में हमारे कमरे वाले भी थे। उनमें एक बहुत बड़ी कंपनी के जनरल मैनेजर थे। उनका काम था कॉरिस्पाण्डन्स (Correspondance; पत्र-व्यवहार) का। कॉरिस्पाण्डन्स बहुत बड़ी चीज़ होती है किसी भी व्यवसाय में। दूसरे, एक सांसद थे। तीसरे, किसी विश्वविद्यालय के प्राध्यापक थे, चौथे, एक किसी ऑफ़िस के सुपरिन्टेंडेंट (Superintendent; अधीक्षक) थे। इन लोगों ने भी हाथ उठाया। बाबा ने कहा, हाँ बच्चे, आज लिख देना, कल सुबह दिखा देना।

मैं तो वैसे लेखक तो नहीं था

ऐसे तो संसार में इतने अच्छे-अच्छे लेखक हैं, वे लिखते हैं तो लाखों की संख्या में पुस्तकें बिकती हैं, लोग पढ़ते हैं और उन्हें पुरस्कार भी मिलते हैं। मैं वैसे तो लेखक नहीं था लेकिन पढ़ने वालों को स्पष्ट रूप से समझ में आने जैसा कुछ लिख सकता था। जब बाबा ने कहा लिखने के लिए तो मेरा भी मन हुआ कि चलो, बाबा की सेवा हो सकती है तो मैं भी लिख दूँ।

हुआ यह कि जब हम कमरे में गये तो बत्ती बुझ गयी। उन दिनों सुबह की क्लास साढ़े चार बजे होती थी। चार से साढ़े चार बजे तक योग होता था, उसके बाद मम्मा आती थीं, वाणी चलाती थीं और उसके बाद बाबा आते थे, मुरली सुनाते थे। सुबह तो नहाने-धोने, क्लास में जाने का समय होता था, यही समय (रात का) था लिखने का। जब बत्ती बुझ गयी तो कैसे लिखें? हमारे कमरे में और जो भी लिखने वाले थे, सब सोचने लगे कि बत्ती नहीं तो लिखें कैसे? अब अन्धेरा हो गया, चलो सो जाते हैं; कल देखेंगे। अगर बाबा पूछेंगे तो कह देंगे कि बाबा, अन्धेरा हो गया था।

मैंने ठान लिया कि मुझे लिखना है ज़रूर क्योंकि यह सद्गुरु की आज्ञा है

मैंने सोचा कि मेरे लिए तो यह बाबा का पहला आदेश है, सद्गुरु कह दीजिये, शिक्षक कह दीजिये, पिता कह दीजिये, उनका यह मेरे प्रति पहला फ़रमान है। यदि हम कहेंगे कि हम नहीं करेंगे, तो यह अवज्ञा करने की आदत पड़ जायेगी। शिव

बाबा तो त्रिकालदर्शी हैं, उनको मालूम रहा होगा कि लाइट चली जायेगी, उसके बावज़ूद भी उन्होंने कहा है कि कल लिख लाना अतः मैं तो लिखकर ले जाऊँगा। अन्य भाई लोग मेरा मज़ाक उड़ायें कि यह अन्धेरे में कैसे लिखेगा? इसकी आँखें कोई बिल्ली की आँखें हैं क्या जो अन्धेरे में भी देख पायेगा! वे आपस में मेरे ऊपर अट्टहास करने लगे, हा-हा करने लगे। मैंने सोचा, ठीक है, अपना-अपना विचार है। मैं तो लिख डालूँगा कैसे भी करके।

उन दिनों वहाँ की ज़मीन ठीक नहीं थी, ऊँच-नीच थी। इसलिए विश्वरतन दादा ने मुझे एक टार्च दी थी। मैंने सोचा कि टार्च ऑन करके लिख दूँ। टार्च ऑन की तो वो भी ऐसी ही थी, रोशनी इतनी कम थी कि उसमें लिखना संभव नहीं था। जब टॉर्च ऑन की तब उस पर भी वे हँस पड़े कि यह समय व्यर्थ कर रहा है। मैंने कहा, भई, मैं तो लिखूँगा ज़रूर। फिर मैंने बाहर देखा तो नीचे रोड़ पर स्ट्रीट लाइट जल रही थी। मैंने सोचा कि वहाँ जाकर लिख लूँ। जैसे आज कड़ाके की सर्दी है, वैसे उन दिनों में भी कड़ाके की सर्दी थी। लगभग ये ही दिन थे। वहाँ जाकर मैंने पहले हिन्दी में लिखा, उसको पढ़ा, ठीक किया फिर उसको दुबारा लिखा एक अच्छे काग़ज़ पर क्योंकि शिव बाबा को दिखाना है जो सबसे बड़ी अथॉरिटी है। फिर अंग्रेज़ी में लिखना शुरू किया। अंग्रेज़ी की शैली अलग होती है। एकदम सौ प्रतिशत अनुवाद नहीं हो सकता है। उसको लिखकर फिर ठीक किया, उसको दुबारा अच्छे काग़ज़ पर लिखा। उतने में लगभग सुबह के तीन-साढ़े तीन बज गये। जब मैं कमरे में गया तो गीत बज रहा था, "जाग सजनिया जाग..."। तब जो सोये थे वे भाई भी उठ खड़े हो गये। उन्होंने देखा कि मैं नीचे से आ रहा हूँ। रात को उन्होंने देखा था कि यह नीचे जा रहा है, उस समय उन्होंने मना किया था। वे जानते थे कि इसने सारी रात सोया नहीं, रातभर लिखकर आया है। उन्होंने यह भी सोचा था कि बाबा तो वृद्ध आदमी है, वृद्ध आदमी बहुत-सी बातें भूल जाते हैं। उन्होंने यह भी सोचा था कि पता नहीं कल सुबह बाबा पूछेंगे या नहीं पूछेंगे, यह बिना मतलब क्यों इतना सीरियस (serious; संजीदा) हो रहा है, कमरे में लाइट न होते हुए भी बाहर जाकर लिखने जा रहा है। उनके व्यवहार से मुझे ऐसा लगा कि उन्होंने बाबा को पहचाना नहीं है। जैसे बाबा कहते हैं कि मैं साधारण तन में आता हूँ, बहुत कम लोग हैं जो मुझे पहचानते हैं। उसी प्रकार, मैं समझता हूँ कि उन्होंने साधारण तन को ही देखा, उनमें विराजमान सर्वशक्तिवान परमात्मा को नहीं पहचाना। थोड़े समय के बाद वे ज्ञान से चले गये।

मुरली पूरी हो गयी, क्लास ख़त्म हो गयी, फिर भी बाबा ने कुछ पूछा ही नहीं

उसके बाद हम सब सुबह क्लास में गये, बाबा ने मुरली सुनायी पर इसके बारे में कुछ कहा नहीं। मैं भी नया था, वे भी नये थे। उन्होंने समझा कि बाबा भूल गया, क्लास में उसके बारे में कुछ पूछा ही नहीं। याद होता तो बाबा पूछते थे ना! मुरली पूरी हो गयी, क्लास ख़त्म हो गयी। अन्य भाई-बहनें उठकर भी चले गये और हम भी खड़े हो गये। खड़े होने के बाद भी बाबा ने नहीं पूछा। उन्होंने सोचा, अच्छा हुआ, हमने लिखा नहीं, कम-से-कम रातभर तो सोये। यह आदमी ऐसे ही जागता रहा। क्लास समाप्त हुआ, बाबा खड़े हुए और कहा, बच्चे, आज पिकनिक करने पहाड़ी पर चलेंगे, नाश्ता सब वहीं करेंगे। आधे घंटे में सब तैयार हो जाओ। बाबा पहाड़ी पर ले गये। वहाँ बाबा ने महावाक्य सुनाये, मम्मा ने भी सुनाये। उस वक्त भी लिखत के बारे में कुछ बोला नहीं। वे बार-बार मेरी तरफ़ देखते थे, कुछ इशारे भी कर रहे थे जैसे मुझे डिफीट (defeat; पराजय का संकेत) दे रहे थे। मैं तो चुप था। उसके बाद बाबा ने कहा, अच्छा बच्चे, रात को मैंने लिखने के लिए कहा था, कौन-कौन लिख लाया? मैंने सिर नीचे कर लिया, शर्म आनी चाहिए थी उनको, आ गयी मुझको। बेचारे वे शर्मिन्दा तो हो गये। मैंने कुछ नहीं कहा, कहा उन्होंने ही कि बाबा, रात को अन्धेरा था, हम नहीं लिख पाये, जगदीश भाई ने लिखा है।

बाबा के प्रति वो मेरा श्रद्धा का फूल था, वो मेरी विनम्र भावना थी

फिर बाबा ने मेरे से कहा, अच्छा बच्चे, क्या लिख लाये हो, पढ़ो। मैंने पढ़ा। लेख इतना चमत्कारी नहीं था, साधारण ही था। सिर्फ़ जो कहना था उसको स्पष्ट रूप से कहा था। वो मेरा श्रद्धा का फूल था बाबा के प्रति, वो मेरी भावना थी बाबा के प्रति। उसमें कोई विशेष शैली, चमत्कार नहीं था। बाबा की आज्ञा का पालन करने के लिए ही तो लिखा था। मैंने सुनाया। बाबा तो भोलानाथ है, बच्चों पर सब-कुछ लुटाने वाला है, उसको अपने बच्चे को आगे बढ़ाना था तो अपने वरदानी महावाक्य बोला कि **"बच्चे, इस ईश्वरीय विश्व विद्यालय का साहित्य लिखने का बाबा आपको वरदान देता है।"** उसी दिन से बाबा ने मुझे कहा कि **"ईश्वरीय विश्व विद्यालय के ज्ञान को कहीं भी पेश करने के लिए मुख्य वक्ता आप ही हो।"** यह तो मेरे लिए एक आश्चर्य था, अजीब-सी बात थी। मैंने यह सोचा भी नहीं था। शुरू से बाबा में मेरी जो भावना थी, स्नेह था, श्रद्धा थी, अगाध प्यार था उसके लिए मैंने यह लिखने का काम किया था।

यह तो मेरे लिए अपार कृपा थी, भोलेनाथ की अकारण कृपा थी

जब बाबा ने यह कहा तो एक मिनट मेरा मन चला बड़ी तेज़ रफ़्तार से, अगर मैं लोगों के सामने ज्ञान रखूँगा तो पहले ख़ुद को समझना पड़ेगा, ख़ुद नहीं समझूँगा तो उनके सामने कैसे रखूँगा? इसका मतलब यह है कि बाबा ने मेरी बुद्धि का ताला खोल दिया। जब बाबा मुझे निमित्त बनायेंगे तो पहले मुझे ही समझायेंगे। इसका अर्थ है कि पहले मेरा ही कल्याण होगा। यह तो बहुत बड़ी बात है कि मैं ईश्वरीय ज्ञान को समझ पाऊँगा। मैं इसको बारीकी से नहीं समझूँगा तो दूसरों को कैसे समझाऊँगा? यह तो बाबा ने मेरा कल्याण ही कर दिया। एक चिट्ठी मैंने बाबा को लिखी कि बाबा, आपने सारा ही ख़ज़ाना मुझे दे दिया। यह किसी मनुष्य का ज्ञान नहीं है, मनुष्य को समझना आसान होता है क्योंकि दोनों के स्तर मनुष्य के हैं। ज्ञान के सागर भगवान को समझना, उसके गंभीर ज्ञान को समझना यह बहुत बड़ी बात है। मुझे ख़ुशी हुई कि उस गंभीर ज्ञान को समझने योग्य बाबा मुझे बनायेगा। मेरी बुद्धि को इतना वरदान देगा, शक्ति देगा, तो मैंने सोचा कि बाबा ने तो मुझे मालामाल कर दिया। **मेरी आँखें गीली हो गयीं। मुझे ऐसा लगा कि ओहो! एक पल में बाबा ने मुझे क्या दे दिया! मैं लिखूँगा, वो छपेगा और संसार के सामने जायेगा, उसके द्वारा सेवा हो जायेगी, उनके आशीर्वाद मुझे मिलेंगे। बाबा ने मुझे इतना दे दिया, इतना दे दिया कि मुझे अपार कृपा, अकारण कृपा मिल गयी।** बाबा को कहते हैं कृपालु, दयालु, वरदानों के भंडार, भोले भंडारी हैं। यह उसकी पहली झलकी थी, पहला स्वरूप था।

बाबा ने कहा, मम्मा इसकी बुद्धि में बैठ जाओ

इसके बाद भी ऐसी कई घटनायें हुईं। एक बार, मम्मा भी बैठी थीं, मैं भी बैठा था चेम्बर में क्लास के बाद। मम्मा तो माँ सरस्वती है ही। बाबा ने मम्मा को संबोधित करते हुए हम सबको, जो वहाँ बैठे थे, कहा कि यह तो साक्षात् सरस्वती है। मम्मा तुम इसकी बुद्धि में बैठ गयी हो? यह बाबा ने कहा मम्मा को। मम्मा का स्वाभाविक संस्कार कहो, स्वभाव कहो यह था कि बाबा जो भी कहे, उसके लिए "हाँ जी" कहना। अगर बाबा कहे, तुम उल्लू हो, उसके लिए भी मम्मा "जी बाबा" कहती थी। जब बाबा ने यह बात कही कि मम्मा तुम इसकी बुद्धि में बैठी हो, मम्मा ने कहा, हाँ बाबा। **मुझे बड़ी ख़ुशी हुई कि साक्षात् सरस्वती जो विद्या की देवी हैं, वो भी मुझे आशीर्वाद दे रही हैं, साक्षात् प्रजापिता ब्रह्मा जो सृष्टि के आदि पिता हैं, ज्ञान के आदि भंडार हैं उन्होंने भी अपना हाथ**

मेरे ऊपर रखा है, आशीर्वाद दिया है। यह मेरा परम सौभाग्य है। उस दिन से मैंने सोचा कि बाबा की कोई भी आज्ञा हो उसको टालना नहीं चाहिए। बाबा की आज्ञा का पालन हम करते चलेंगे तो बाबा हमें भंडारों से भरपूर करेंगे।

इसीलिए ही वे ज्ञान की देवी, माँ सरस्वती कहलायी

एक दिन बाबा और मम्मा दोनों बैठे थे। मम्मा की मुरली समाप्त हुई थी, बाबा ने मुरली शुरू की थी। बाबा ने कहा कि हम सब पहले उल्लू थे, उल्टे लटके पड़े थे। हमें कुछ भी पता नहीं था इस संसार में। फिर बाबा ने कहा कि यह अन्दर से निकलना चाहिए कि हम सब उल्लू थे। जब तक ऐसा नहीं समझेंगे कि हम सब उल्लू थे और अल्लाह ने आकर हमें सुल्टा बना दिया तो कैसे पता पड़ेगा कि बाबा के प्रति आपका प्यार है। फिर बाबा ने कहा, मम्मा बैठी हुई है, मम्मा बोलती ही नहीं है। मम्मा, तुम क्यों नहीं कहती कि हम उल्लू थे? मम्मा ने सिर हिलाकर इशारे से ही 'हाँ बाबा' कहा। बाबा ने कहा, देखो, अभी भी मम्मा कहती नहीं है, सिर्फ़ सिर हिलाती है। फिर मम्मा ने कहा, हाँ बाबा, हम पहले उल्लू थे। मैं इस बात को इसीलिए बता रहा हूँ कि मम्मा की यह विशेषता थी कि बाबा ने जो कहा, मम्मा ने 100% निश्चय करके मान लिया और चलकर दिखाया। वे कभी नहीं भूली कि यह कौन कह रहा है! इसीलिए ही वे ज्ञान की देवी, माँ सरस्वती कहलायी। ज्ञान का पूरा मर्म, ज्ञान की सारी गंभीरता उनमें थी। उनका जीवन ही ज्ञानयुक्त, ज्ञानस्वरूप, ज्ञानपूर्ण था। ✲

बाबा कहे, ख़ुश रहो अहले वतन...

– भ्राता जगदीश चन्द्र जी

ब्रह्मा बाबा का 18 जनवरी, 1969 को अव्यक्तारोहण हुआ। उस रात्रि को उनका आत्मा रूपी हंस उड़कर नील गगन के पार अथवा प्रकाश के लोक में, अव्यक्त लोक में चला गया। प्रश्न उठता है कि उनके दिव्य पुरुषार्थ के ऐसे कौन-से आलोक बिन्दु रहे होंगे जिनके द्वारा उन्हें उस अनुपम स्थिति की उपलब्धि हुई और शिव बाबा के अंग-संग रहकर सृष्टि-संरचना के कार्य करने का परम सौभाग्य प्राप्त हुआ?

अगर उनके अलौकिक जीवन की शोभा-यात्रा पर दृष्टि डाली जाये तो उनके पुरुषार्थ की कई विशेषतायें सामने आती हैं जिनमें से कुछेक निम्नलिखित हैंह्नःह्न

विदेह स्थिति

सबसे पहली बात यह है कि उन्होंने देह और देही, रथ और रथी अथवा शरीर और आत्मा की भिन्नता का पाठ ख़ूब पक्का कर लिया था। जैसे किसी सांसारिक आदमी को देह-अभिमान का पाठ पक्का होता है, वैसे ही विदेह अवस्था अथवा आत्मिक स्थिति उनके लिए सहज स्वभाव हो गयी थी। प्रारम्भ से, उन्हें जब से तारों की तरह आत्मा का ब्रह्मलोक से इस धरा पर आकर साकार रूप लेने का दिव्य साक्षात्कार हुआ था तथा उन्हें जब से अपने काका मूलचन्द की देह से आत्मा के निकलने का दृश्य दिखायी दिया था, तब से उन्होंने, निष्ठापर्वूक यह अभ्यास करना प्रारम्भ कर दिया था कि, ''मैं 'आत्मा' हूँ, जसोदा (उनकी धर्मपत्नी) 'आत्मा' है, राधिका (उनकी बहू) 'आत्मा' है, सभी देहों में विराजमान 'आत्मायें' हैं...'' अर्थात् हरेक देहधारी और मित्र-सम्बन्धी को उन्होंने आत्मिक दृष्टि से देखने का अभ्यास पूरा मन लगाकर करना शुरू कर दिया था और उस अभ्यास की परिपक्वता होने तक उन्होंने कभी भी अपने इस पुरुषार्थ को ढील नहीं दी थी, यहाँ तक कि जो कोई उनसे मिलने आता, न केवल वे उसे आत्मिक दृष्टि से देखते बल्कि उससे पूछते, ''बच्चे, किससे मिल रहे हो? यह कौन है? क्या इसे पहचानते हो? क्या आपको यह याद है कि मैं एक आत्मा हूँ?'' वे प्रायः यह भी कहा करते थे कि, ''जब कभी आप एक-दूसरे से मिलो तो अभिवादन करते समय एक-दूसरे से कहो, शिव बाबा याद है?''

वे कहा करते थे, ''बच्चे, एक-दूसरे के प्रति मित्रता निभाने की यही सच्ची रीति है कि एक-दूसरे को 'आत्मा' और 'परमात्मा' की याद दिलाओ। बच्चे, एक आँख में सदा मुक्ति और दूसरी आँख में जीवनमुक्ति रखो। यह देह तो कब्र दाख़िल होने वाली है। इस क्षणभंगुर

एवं नाशवान देह को देखते हुए भी इसके भान में न आओ। यह शरीर काम-विकार से पैदा हुआ है, पुरानी जुत्ती की तरह से है; इससे क्या दिल लगाना? बच्चे, अगर देह से दिल लगाओगे तो अपना स्वर्गिक राज्य-भाग्य गँवा बैठोगे। बच्चे, यह अन्तिम समय है, अन्त में तो भक्त भी "हरि बोल, हरि बोल" का अभ्यास किया करते हैं, अतः आप भी शिव बाबा को याद करते रहो ताकि यह स्थिति पक्की हो जाये। इस देह में फँसे रहोगे तो फिर आत्मा उड़ नहीं सकेगी।" तो जैसे हठयोग का अभ्यास करने वाले सारा दिन गोबर-लकड़ी जलाकर धूनी रमाये रहते हैं, बाबा 'आत्मा' और 'परमात्मा' ही की धुन जमाये रहते थे। इस प्रकार, "आत्मा, आत्मा" कहते-समझते वे हड्डी-माँस के कलेवर से तो पहले ही अलग हो चुके थे। हड्डियाँ तो वे सेवा में लगा चुके थे। तब वे फ़रिश्ते नहीं थे तो क्या थे?

जैसे एक नवजात पक्षी उड़ने का अभ्यास करते-करते एक दिन उड़ जाता है और मुक्त होकर आकाश में विचरता है और स्वतन्त्रता की साँस लेता है, वैसे ही "आत्मा हूँ, आत्मा हूँ" की स्मृति रूपी पुरुषार्थ से एक दिन वह आत्मा ज्ञान और योग के पंख लिये नील गगन से भी पार उस चाँदनी के जैसे प्रकाश वाले प्रकाशलोक में जा पहुँची। भक्त लोग किसी के शरीर छोड़ने पर प्रायः कहा करते हैं कि "वह आत्मा प्रभु को प्यारी हो गयी।" इस प्रकार, वे भी सही अर्थ में प्रभु को प्यारे हो गये। प्रभु को प्यारे तो वे पहले भी थे क्योंकि उनके मन की लगन तो उसी प्रभु के ही प्यार में मगन रहती थी।

कुछ भी नहीं चाहिए

उनके पुरुषार्थ में एक विशेषता यह भी थी कि उनके जीवन में न कोई मान-शान की इच्छा थी, न खान-पान की लालसा। न किसी से उनका लगाव था और न उनके लिए कोई आकर्षण का बिन्दु। "बस, मुझे कुछ भी नहीं चाहिए"ह्न ऐसा उनके मन का दृढ़ भाव था। "पाना था जो पा लिया, और क्या बाक़ी रहा?"ह्न यह स्वरालाप उनके मन की वीणा पर सतत्, निरन्तर, अन्दर ही अन्दर होता रहता था। उनकी श्वासों के स्वर इसी स्वर में समाये हुए थे। पैसे को तो वे हाथ में लेते ही नहीं थे। **कोई महल-माड़ी, कोई विमान-गाड़ी या किसी शान-शौकत का स्पर्श भी उन्हें नहीं रहा था। सादगी की वे चैतन्य प्रतिमूर्ति थे।** अतः पृथ्वी के आकर्षण तो मिट ही चुके थे।

अब घर चलना है, अब घर चलना है...

वे इस भूमंडल पर एक फ़रिश्ता तो पहले ही से भासित होते थे क्योंकि पृथ्वी पर होते हुए भी उनके पाँव पृथ्वी पर नहीं थे। बस, "अब घर चलना है, अब घर चलना है..."ह्न यह नाद उनके मन रूपी तंबूरे पर बजता रहता था। इस दुनिया से तो उन्होंने जीवन रूपी जहाज़ का लंगर उठा ही लिया था। ऐसा लगता था कि वे केवल वत्सों को तैयार करने के लिए ही रुके हुए हैं वरना जहाज़ तो सामान से भर चुका था और इस दुनिया रूपी बन्दरगाह से रवाना होने के लिए तैयार था। किसी ने उन्हें माना या न माना, पहचाना या न पहचाना, उनके रास्ते में रुकावट डाली या सहयोग दिया, इन सबसे पार, वे बेपरवाह बादशाह बन चुके थे।

हल्के-हल्के

इस प्रकार, वे यहाँ रहते भी सदा यात्रा पर थे। वे यहाँ तो थे, परन्तु यहाँ के नहीं थे और सभी प्रकार के फ़िकर से फारिग़ होकर लाइट (हल्के) तो हो ही चुके थे। उन्होंने सब-कुछ शिव बाबा पर छोड़ रखा था और शिव बाबा की चाबी ही से चलते थे। सारथी तो शिव बाबा ही था, वह जहाँ चाहे ले चले। बागडोर उसके हाथ में दे रखी थी। वे धरती के सब दृश्यों और रिश्तों से काफी ऊँचे उठ चुके थे। "त्राहि-त्राहि" करते हुए इस संसार पर उन्हें दया आती थी। इसलिए वे प्रेम और वरदानों की वर्षा करते रहते थे।

रिश्ते-नाते नहीं रहे थे

उनके दैहिक तथा मानसिक रिश्तों-नातों की रस्सियाँ तो पहले ही से कट चुकी थीं। अतः जब रिश्ते पहले से ही नहीं रहे थे और धरती के आकर्षण भी पहले ही मिट चुके थे, तब फ़रिश्ता होकर उड़ने में क्या गुँजायश रही होगी? जैसे उड़ने वाला गुब्बारा कच्चे धागे से बँधे हुए होने पर बच्चों के मन को बहलाता है और फिर हवा का झोंका आता है और वह उस धागे को भी तोड़कर "टा-टा" करते उड़ जाता है, वैसे ही कुछ थोड़े-से हिसाब-किताब का कच्चा धागा अथवा बच्चों को तैयार करने कि ज़िम्मेवारी शायद कुछ काल के लिए उन्हें रोके हुए थी। एक झोंका आने की ज़रूरत थी कि "वो चले"! हाँ, ऐसा ही तो हुआ।

सब कुछ बाबा का है, मेरा कुछ भी नहीं है

एक बात जो उनके मन में अमिट छाप की तरह अमित थी, वह यह कि वे सब-कुछ बाबा ही का समझते थे। मालिक होते हुए भी वे बालक ही थे। उन्होंने कभी भी अपना तो कुछ समझा ही नहीं। तो जब उनका यह तन पहले से ही उनका नहीं रहा था, तब तो केवल "आया परवाना और हुआ रवाना" वाली बात रह गयी थी। शरीर के साथ सम्बन्ध तो उन्होंने पहले से ही "नाम मात्र" ही कर दिया हुआ था, अब तो केवल

शिव बाबा की तरफ़ से यह इशारा ही होने की ज़रूरत थी कि, ''अब चले जाओ''। वरना ''हम तो सफ़र पर तैयार बैठे हैं'' अथवा ''ख़ुश रहो अहले वतन, हम तो सफ़र कर चले''ह्न यही उनकी स्थिति थी। वे अन्य सबको भी कहा करते थे कि बच्चे, एवर रेडी (Ever ready) रहो।

बाबा, बाबा...

वे शिव बाबा को तो 'बाबा' कहते ही थे, अपने लिए भी ''मैं'' शब्द की बजाय 'बाबा' शब्द का प्रयोग किया करते थे; उन्हें भी तो सभी 'बाबा' कहकर ही सम्बोधित करते थे न! अतः वह (शिव) बाबा, यह (ब्रह्मा) भी बाबा, तब अन्तर ही कितना रह गया था? कभी वह बाबा, कभी यह बाबा और कभी दोनों बाबा! इस प्रकार, ''बाबा-बाबा'' कहते-कहते एक दिन ऐसा आया कि दोनों ने इकट्ठा रहने की ठान ली। ब्रह्मा बाबा के मन में यह भाव रहा होगा कि यद्यपि मन तो दोनों के मिले हुए हैं परन्तु ख़ुदा और ख़ुदा-दोस्त की यह दूरी और यह जुदाई कब तक? ब्रह्मा बाबा ने शिव बाबा को कह दिया होगा कि, ''बाबा, बस अब मैं आ रहा हूँ'', और भोले शिव बाबा तो कभी उनकी बात टालते ही नहीं थे। अतः शिव बाबा ने भी कह दिया होगा कि, ''अच्छा तो फिर चले आओ।'' फासला तो कोई पहले भी था नहीं, लेकिन अगर कुछ रहा भी होगा तो वह भी न रहा।

उड़ चले विहंग मार्ग पर

बाबा वैसे भी कहा करते थे किह्न ''यह रथ तो नन्दीगण है; यह शिव बाबा का रथ है।'' कहने का भाव यह है कि शिव बाबा तो पहले ही उस रथ पर सवार रहते ही थे; उनके आते रहने से न केवल दोनों का सम्बन्ध अत्यन्त घनिष्ठतामय हो गया था बल्कि इकट्ठा रहने का उन्हें ऐसा अभ्यास हो गया था कि आख़िर वह दिन आ गया जब ब्रह्मा बाबा ने भी अपना रहन-बसेरा अव्यक्त लोक में ही बना लिया। आख़िर यह 'रथ' तो वहाँ जा भी नहीं सकता था। इसलिए इस 'रथ' को यहाँ छोड़कर 'रथी' अपने 'सारथी' के पास चला गया क्योंकि अब इस रथ की आवश्यकता ही नहीं रही थी; अब तो तीव्रगामी, विहंगममार्गी वाहन की आवश्यकता थी।

व्यर्थ और नकारात्मक की समाप्ति

यूँ तो उनके निकट जो लोग भी कभी बैठते थे, उन्हें पहले ही से यह अनुभव होता था कि कुछ शीतल-सी झिलमिल-झिलमिल, कुछ भीनी-भीनी-सी सुगंधि, कुछ सुख की रश्मियाँ उनके मन को भी सराबोर (गीला) कर रही हैं। बाबा की उपस्थिति में उन्हें लगता कि उनके विकार शान्त हो गये हैं, उनकी बुराइयाँ बन्द हो गयी हैं, उनकी कमज़ोरियाँ मिट-सी गयी हैं और उनके मन में यह आशा-प्रदीप हो गयी है कि वे भी एक अच्छे इन्सान बन सकते हैं। कारण यह था कि ब्रह्मा बाबा कभी नकारात्मक (Negative) रीति से सोचते ही नहीं थे। वे कभी किसी के अवगुणों का चिन्तन करते ही नहीं थे। उनका समय, उनके संकल्प, उनकी शक्तियाँ कभी बेकार (wastage) की ओर जाती ही नहीं थीं। वे तो वेस्ट (waste) को बेस्ट (best), अथवा निकृष्ट को श्रेष्ठ और व्यर्थ को समर्थ बनाने वाले थे। वे बिगड़ी को संवारने वाले थे। तब उनकी उपस्थिति में दूसरों का मन भी अपनी कमी और कमज़ोरियों से हटकर आत्म-विश्वास और उत्साह से भरपूर क्यों न हो जाता? अब उनके संस्कारों तथा व्यवहारों में तो व्यर्थ की समाप्ति और सामर्थ्य की प्राप्ति हो गयी थी और फ़रिश्तों का यही तो विशेष लक्षण है कि उनमें व्यर्थ और नकारात्मक नहीं होता। अतः पूर्णता को प्राप्त कर वे पुनीत धाम को चले गये। वे समर्थ बन गये तो फिर सामर्थ्य उन्हें ऊँचाइयों पर ले गया।

अन्य किसी को अव्यक्त लोक और ऐसी अव्यक्त स्थिति का सौभाग्य क्यों नहीं प्राप्त हुआ?

यूँ संसार में धर्मस्थापक, ऋषि-मुनि, सन्त-महन्त, आचार्य-प्राचार्य और भी हुए। उन सबने भी संसार को अच्छी-अच्छी बातें कही और उनके भी जीवन में महानतायें और विशेषतायें अवश्य रही होंगी, तभी तो उन्हें बहुत लोग आज भी मानते हैं। परन्तु प्रश्न उठता है कि वे इस प्रकार अव्यक्त स्थिति को प्राप्त क्यों नहीं हुए? उन्हें इस प्रकार के 'सूक्ष्म देवत्व' का सौभाग्य क्यों नहीं प्राप्त हुआ?

श्रद्धालु लोग तो कहते हैं कि उनके धर्मपिता ने भी परम स्थिति को प्राप्त किया। कई भक्तजन कहते हैं कि अमुक धर्मपिता परिनिर्वाण को प्राप्त हुए। दूसरे कई कहते हैं कि उनके धर्मपिता को 'मोक्ष' की प्राप्ति हुई। अन्य कई यह भी कहते हैं कि उनके गुरु जी 'ज्योति ज्योत समा गये'। कुछ ऐसा भी मानते हैं कि उनके धर्मपिता 'मुक्त' हो गये। और अन्य कुछ कहते हैं कि उनके श्रद्धेय महात्मा जी 'प्रभु में लीन' हो गये। परन्तु भावना की बात अलग है और निष्पक्ष रूप से विवेक का प्रयोग करते हुए समझने की बात अलग है। सबके प्रति सम्मान होने के बावजूद भी कहना पड़ता है कि पहले तो इस प्रश्न का समाधान होना ज़रूरी है कि क्या आत्मा परमात्मा में लीन होती भी है या अविनाशी आत्मा का परमात्मा से सदा पिता-पुत्र ही का नाता बना रहता है? आख़िर आत्मा का स्वरूप क्या है और परमात्मा की पहचान क्या है? शास्त्रों में तो मुक्ति अथवा मोक्ष के बारे में कड़ा विवाद है। एक शास्त्र जिसे 'मुक्ति' मानता है दूसरा उसे

पत्थर के जैसी स्थिति मानता है। अतः कौन-सी मुक्ति?ह्न पहले यह तो फैसला हो।

यदि आत्मा और परमात्मा अलग नहीं हैं तो आत्मा 'समर्पण भाव' किस के प्रति करेगी? वह मन को किस में स्थित करेगी? किस पूर्ण देव-देवी के साथ सर्व सम्बन्ध जोड़ेगी? किस की मत पर चलेगी? और यह सब न करने पर सर्व दैहिक रिश्तों से तथा कर्मबन्धन से कैसे मुक्त होगी और उसमें हल्कापन कैसे आयेगा और वह न आने से वह फ़रिश्ता कैसे बनेगी?

पुनश्च, हरेक जीवन के अन्तिम आयाम पर विचार करके देखने की ज़रूरत है कि तब उनकी स्थिति क्या थी। कोई-कोई धर्मपिता तो भगवान के अस्तित्व को मानते ही नहीं थे; तब वे अन्त में किस स्मृति तथा स्थिति में रहे होंगे? सत्य तो यह है कि उनके अनुयायी उस धर्मपिता को ही भगवान मानते हैं। उदाहरण के रूप में महात्मा बुद्ध और वर्धमान महावीर महान् साधक थे। चरित्र-धन के धनी भी थे और संसार से विरक्त थे। परन्तु उनका परमात्मा के अस्तित्व में विश्वास नहीं था। अतः परमात्मा को प्यारा होने अथवा अव्यक्त होकर उनका सामिप्य प्राप्त करने की तो बात ही नहीं उठती। उनका पुरुषार्थ तो 'परिनिर्वाण' अथवा 'मोक्ष' की प्राप्ति के लिए था और 'मोक्ष' के बारे में तो उनका मन्तव्य ही निराला है। उसमें अव्यक्त स्थिति की तो बात ही नहीं।

ईसाई धर्म के स्थापक ईसा मसीह को जब सूली पर चढ़ाया गया, तब उनके मुख से ये शब्द निकले कि, "हे ईश्वर, तूने मुझे छोड़ दिया है।" उन्होंने यह नहीं कहा कि, "हे ईश्वर, मैं तेरे पास आ रहा हूँ।" इसके अतिरिक्त, वे कहा करते कि, "मैं भगवान की बादशाहत स्थापन करने आया हूँ" और वह बादशाहत अब अति निकट है। अब 2000 वर्ष हुए हैं और दुनिया तो गिरावट ही की तरफ़ चली आ रही है और भगवान की बादशाहत तो स्थापित हुई नहीं। क्षमा कीजिये कि उन्होंने भगवान की बादशाहत का जो चित्र दिया उसके अनुसार स्वयं उस धर्म के लोग भी तो अभी तैयार नहीं हुए। इसके अतिरिक्त उन्होंने भगवान और उनके धाम का तो पूर्ण परिचय ही नहीं दिया।

इसके अतिरिक्त, अन्य एक मुख्य धर्मस्थापक ने तो एक से अधिक पत्नियाँ कीं और उनके जीवनकाल में स्वयं उनके हाथों हिंसा के कई वृत्तान्त हुए गोया उनके काम विकार के रिश्ते भी बने रहे, घृणा के नाते भी जुटे रहे और वे फ़रिश्ते के समान बेदाग़ भी नहीं बने। परन्तु अव्यक्त अवस्था के लिए तो सत्य के अतिरिक्त पूर्ण ब्रह्मचर्य और पूर्ण अहिंसा का पालन भी आवश्यक है। फ़रिश्ते में काम, घृणा इत्यादि के दाग़ नहीं होते, न उसके देह के रिश्ते होते हैं।

अन्यश्च, अन्य किसी भी प्रमुख धर्म में कन्याओं-माताओं को तो उच्च स्थान दिया ही नहीं गया। गोया उनका ध्यान स्त्री चोले से ढकी हुई 'आत्मा' की ओर न जाकर, स्त्री चोले पर या महिला वर्ग की कमियों पर अधिक गया। महात्मा बुद्ध ने अपने शिष्यों के बहुत दबाव डालने के बाद ही नारियों को भिक्षु बनाना स्वीकार तो किया परन्तु साथ में यह भी कह दिया कि, "वास्तव में नारियों को भिक्षु बनाने की इजाज़त देकर मैंने बहुत बड़ी भूल की है।" उन्होंने कहा कि नारियों को भिक्षु बनाने के परिणामस्वरूप यह धर्म 5000 वर्षों से अधिक समय तक ठीक रीति से नहीं चल पायेगा।

इसके अतिरिक्त उनके दर्शन में न तो 'अव्यक्त स्थिति' की कोई विशद चर्चा है, न ही उसे कोई महत्त्व दिया गया है। तब उस स्थिति को प्राप्त होने की बात ही क्या रही?

अव्यक्त ब्रह्मा के कार्य की आवश्यकता

अध्यात्म में बहुत सारे प्रश्न ऐसे हैं कि जिनको केवल दार्शनिक व्याख्या से स्पष्ट करने पर लोग उनसे पूर्णतः सन्तुष्ट नहीं होते। उदाहरण के तौर पर परमात्मा के अस्तित्व को सिद्ध करने के लिए दार्शनिक प्रमाण देने पर भी लोग पूर्णतः तृप्त नहीं होते। वे फिर-फिर कहते हैं कि क्या किसी ने परमात्मा को देखा है?

शरीर में आत्मा नाम की कोई चेतन सत्ता है और शरीर छोड़ने के बाद भी उसका अस्तित्व बना रहता है। इस बात को स्पष्ट करने के लिए तर्क देने के बाद भी कई लोग पूछते हैं कि, "क्या आज तक कभी भी किसी ने वापिस आकर यह बताया है कि शरीर के बाद भी आत्मा नष्ट नहीं होती?"

इस प्रकार, जब किसी को सृष्टि के आदि-मध्य-अन्त का अर्थात् तीनों कालों का ज्ञान दिया जाता है, तो वे कहते हैं कि जन्म-मरण में आने वाला कोई देहधारी व्यक्ति, जो कि स्वयं कालाधीन है, वह भला तीनों कालों का ज्ञान कैसे दे सकता है?

अतः ब्रह्मा, जिन्हें कि ज्ञानियों में सर्वश्रेष्ठ माना गया है यदि वे यज्ञपिता अथवा प्रजापिता ब्रह्मा के नाम से जाने गये अपने साकार जीवन के आयाम से अव्यक्त आयाम में जाते हैं अर्थात् देह छोड़कर फ़रिश्ता बनते हैं और पुनः किसी मानव-देह में 'पर-काया प्रवेश' की विधि से उस देह में सन्निविष्ट होकर आत्मा और परमात्मा का अद्भुत ज्ञान देते हैं और जन्म-मरण से न्यारी एवं अतीत स्थिति में टिक कर सृष्टि के आदि-मध्य-अन्त अथवा तीनों कालों का मर्म बताते हैं, तो वह एक प्रत्यक्ष प्रमाण की कोटि का अकाट्य प्रमाण वाला ज्ञान हो

जाता है। उन द्वारा दिया हुआ ज्ञान 'साक्षात्कृत ज्ञान' की श्रेणी में आता है। उन द्वारा प्राप्त अध्यात्म दर्शन मान्य, स्वीकार्य और सन्तुष्टकारी होता है।

इसी प्रकार, अन्य कुछ लोग कहते हैं कि, ''मुक्ति क्या है, जीवनमुक्ति क्या है?ह्न इन जटिल प्रश्नों का उत्तर कोई वृद्ध अवस्था वाला मनुष्य भला कैसे दे सकता है?'' पुनश्च, जो आत्मा मानव देह में होगी, वह तो किसी देश-प्रदेश, जाति-विजाति और काल-उपकाल से सम्बन्धित होगी; वह उन सबसे ऊपर उठकर, देह के सब धर्मों से मुक्त होकर, आयु, वर्ण, वर्ग, लिंग, कुल इत्यादि से पूर्णतः असंग होकर शुद्ध आध्यात्मिक ज्ञान कैसे दे सकेगी? ऐसा ज्ञान देने के लिए भी परमपिता परमात्मा के बाद अव्यक्त स्वरूप वाले ब्रह्मा ही सर्वाधिक समर्थ हो सकते हैं।

कुछ लोग यह भी कहते हैं कि परमात्मा तो 'निराकार' हैं; वे तो जन्म-मरण से न्यारे हैं, उन्हें भला दुःख-सुख का क्या पता? हम मनुष्यों की दयनीय स्थिति का उन्हें अनुभव कहाँ? वे हमारी इस दुर्गति की पीड़ा कैसे पहचानते होंगे? यद्यपि परमात्मा सर्वज्ञ हैं अर्थात् वे सब जानते हैं, तो भी उनके इस प्रश्न के उत्तर में ये तो प्रायः कहा ही जाता है कि परमात्मा सर्वज्ञ है परन्तु यदि उनके बारे में एक क्षण के लिए मान भी लिया जाये कि परमात्मा को मनुष्य की दुःखमय अवस्था का अनुभव नहीं है, तो ब्रह्मा बाबा को तो यज्ञपिता के रूप में सांसारिक भी अनुभव हुए हैं; तब वे तो मानव मात्र की दुःखमय स्थिति को अनुभवात्मक रीति से जानते ही हैं और उनकी निवृत्ति के उपाय भी दे सकते हैं।

ब्रह्मा अव्यक्त क्यों हुए?

स्वयं ब्रह्मा बाबा ने भी व्यक्त से अव्यक्त होने के पीछे छिपे रहस्यों का समय-समय पर स्पष्ट किया है। उन्होंने कहा है, ''वत्सो, आपको व्यक्त से अव्यक्त बनाने के लिए ही मैं अव्यक्त हुआ हूँ। क्या आप व्यक्त ही बने रहोगे? देखो, अब इस धरती को आकाश पुकार रहा है! आप भी मेरे पीछे-पीछे चले आओ। क्या व्यक्त लोक इतना अच्छा लगता है कि उसको छोड़ना नहीं चाहते?

वत्सो, अगर मैं व्यक्त बना रहता तो आपको अव्यक्त बनने का अभ्यास कैसे होता? आप मुझे अपने पास बुलाते हो, यह बुलाना भी कब तक? क्यों नहीं मेरे पास यहाँ चले आते हो? क्या प्रीति की रीति निभाना नहीं आता? बाप वहाँ और बच्चे यहाँ! क्या यह अच्छा लगता है? क्या यह जुदाई पसन्द है? क्या बाप की पुकार सुनायी नहीं देती? क्या अभी पंख नहीं लगे हैं? क्या उड़ना नहीं सीखे हो? क्या उड़ती कला को प्राप्त नहीं हुए?''

बाबा के इस प्रकार के बोलों से स्पष्ट होता है कि हमें व्यक्त भाव से निकाल कर अव्यक्त भाव में स्थित करने के लिए ही बाबा ने ये उड़ान भरी है। अगर हम उन्हें साकार रूप में ही देखते रहते तो हमारी बुद्धि सूक्ष्म की ओर कैसे जाती? आख़िर तो यहाँ से जाना ही है, उस जाने के लिए जम्प (jump; छलांग) भी लगाना ही है। अतः बाबा वहाँ हमारी आगवानी करने के लिए ही पहले गये हैं।

बच्चे कहते हैं, ''बाबा, हम आपसे मिलें कैसे? आप तो साकार में हैं नहीं जब कि हम साकार में हैं? बाबा, आप हमको छोड़कर क्यों चले गये?'' बाबा कहते हैं, ''बच्चे, अगर मैं साकार में यहाँ होता तो इस बढ़ती हुई संख्या में मुझसे मिलने का तुम्हारा नम्बर कब आता और तुम कितनी देर मुझसे मिल पाते? रात को तो तुम सो जाते या मैं भी सो जाता और दिन में तुम सब में से कौन, कितने मुझसे कैसे मिल सकते? तब तो भीड़ लग जाती, बात करने का मज़ा भी न रहता। गाड़ियों में आने की रिज़र्वेशन (reservation) भी न मिलती या कभी शरीर और स्वास्थ्य साथ न देता। कभी मिलाने वाले भी मना कर देते और अब तो देखो, इन सब रुकावटों और परेशानियों से फ़ारिग़ होकर जब चाहो मुझसे मिल सकते हो और जितना समय चाहो मेरे पास रह सकते हो। यहाँ मेरे कमरे की दीवारें नहीं हैं। यहाँ पहुँचने के लिए केवल बुद्धि के विमान से आना होता है; दूसरे विमान का ख़र्च भी नहीं करना पड़ता। धक्कापेल में धक्का भी नहीं खाना पड़ता। बस, संकल्प करो और पहुँच जाओ। अतः बच्चे, मैंने तो मिलन की रीति आपके लिए और भी सहज ही कर दी है। बस, केवल उड़ना सीखो। तो पहुँचने में कोई देर नहीं, कोई ख़र्च नहीं, कोई रुकावट नहीं।

बाबा कहते हैं, ''बच्चे, अगर मैं व्यक्त से अव्यक्त न बनता तो आपको अव्यक्त का अनुभव कैसे कराता? पहले मैं अनुभव करूँ, तभी तो आपको अनुभव करा सकूँ। आगे इंजन चले, तभी तो पीछे गाड़ियाँ चलेंगी। अतः आपको सूक्ष्म बनाने ही के लिए मैं यहाँ आया हूँ। परन्तु आप इतनी देर क्यों लगा रहे हो? बच्चे, अब जल्दी करो ताकि घर चलें। क्या अभी इस दुनिया से थके नहीं हो? अब छोड़ो इस काँटों की दुनिया को। आप बच्चों के कारण ही मैं भी रुका हुआ हूँ। अभी परमधाम का गेट भी नहीं खुला क्योंकि मेरा वचन है कि आपके साथ ही चलूँगा। तो, देखो, आपके कारण से मुझे भी देर हो रही है। बोलो बच्चे, कब परमधाम का गेट खोलूँ या चलने का इरादा ही नहीं है?''

अन्यश्च, बाबा कहते हैं, ''बच्चे, आप उलहना देते हो

कि बाबा, आप हमको छोड़कर अव्यक्त वतन में चले गये! बाबा, आप हमें यहाँ छोड़ गये!!''

''परन्तु वास्तव में, मैं तो यहाँ से आप की ही सेवा में लगा रहता हूँ। आपको छोड़कर कहीं गया थोड़े ही हूँ? आपके पुरुषार्थ को तेज़ करने, आपके संस्कारों के परिवर्तन में तीव्र गति लाने में ही तो मैं लगा रहता हूँ। इस पर भी आप कहते हो कि बाबा, आप सूक्ष्मवतन में क्या करते हैं? बाबा, आप वहाँ पर क्यों चले गये? आप जल्दी-जल्दी अपने संस्कारों को बदलो और अव्यक्त स्थिति में टिक जाओ तो, बस, चलें वतन की ओर।''

पुनः बाबा समझाते हैं, ''देखो बच्चे, यह कहा गया है ना कि ब्रह्मा ने संकल्प द्वारा सृष्टि रची। अतः उस बेहद की सेवा के लिए मुझे हद वाली दुनिया को छोड़कर यहाँ आना पड़ा है। उस स्थूल देह में रहते हुए मैं देश-देशान्तर के बच्चों की सेवा कैसे कर सकता? तुम्हारे यहाँ तो रात भी है, बरसात भी; दिन भी और धूप भी। देशों की हदों को पार करने पर प्रतिबन्ध भी है और आने-जाने के लिए प्रबन्ध भी चाहिए। परन्तु यहाँ सूक्ष्मवतन में तो उन सबसे उठकर जहाँ चाहूँ, जब चाहूँ, संकल्प से ही पहुँच जाता हूँ या बैठे हुए भी सेवा करता हूँ। वत्सो, अगर मैं सारी सृष्टि की आत्माओं की सेवा न करूँ तो ये 'विश्व-पिता' का कार्य कैसे कहलायेगा? जब शिव बाबा ने नाम 'ब्रह्मा' रखा है और पहले दिन से ही कह दिया था कि ''तुम्हें नयी सृष्टि रचनी है'', तो बाप का दिया हुआ वो कर्त्तव्य तो इसी विधि से निभाना ही होगा और अगर सतयुगी सृष्टि न रचूँ तो आपके पुरुषार्थ की प्रालब्ध के लिए तैयारी कैसे होगी? अगर सृष्टि को स्वर्ग न बनाऊँ तो आपको वर्सा क्या दूँगा? अतः मैं तो आपकी ही सेवा में लगा हूँ क्योंकि इस बाप का वायदा है कि आपको स्वर्ग का राज्य-भाग्य दूँगा। मैं बेहद की सेवा करूँगा तभी तो आपको बेहद का राज्य मिलेगा। क्या आपको बेहद का राज्य-भाग्य नहीं चाहिए? नहीं चाहिए हो तो बता दो।''

बाबा कहते हैं, ''देखो, सूर्य छिपता है तब संसार के लोगों को चाँद और तारों की झिलमिल दिखायी देती है। जब तक सूरज ही सामने रहेगा, तब चाँद और तारों की छटा कब छटकेगी? उन्हें अवसर ही कब मिलेगा? अतः अब आप चमको और संसार को प्रकाश दो। इस कारण ही थोड़ी देर के लिए बाप ने थोड़ा किनारा किया है। यह थोड़ा-सा समय पार्ट बजाना ही होगा।''

इस प्रकार, मीठे बाबा, मीठे-मीठे शब्दों में, मीठे-मीठे बच्चों को मीठी-मीठी बातें बताते हुए, मिश्री से भी मीठा बना रहे हैं और व्यक्त से अव्यक्त होने के तथा अगम-निगम के छिपे हुए भेद भोले बनकर बता रहे हैं।

अब अव्यक्त बनने का पुरुषार्थ करने का समय

यज्ञपिता ब्रह्मा बाबा का पुरुषार्थ तो तीव्र गति से चल ही रहा था। हवाई जहाज़ भी तो एयरपोर्ट पर पहले तेज़ चलता है, फिर और तेज़ होता जाता है और तेज़ होते-होते आख़िर उड़ जाता है और पृथ्वी पर खड़े लोग देखते ही रह जाते हैं। ऐसे ही पिताश्री ने पुरुषार्थ कर परवाज़ कर (उड़ान भर) लिया। आख़िर जब वे सब दिव्यगुण युक्त हो गये, पवित्रता की छटा छलकने लगी, वे पूर्णता की स्थिति को प्राप्त होने पर आये तो उनका उस शरीर को छोड़ना स्वाभाविक ही था क्योंकि वो शरीर उस पूर्ण आत्मा के लिए तब उपयुक्त ही नहीं था। पूर्ण के लिए तो पूर्ण ही शरीर चाहिए; इसलिए वे फ़रिश्ता बन गये। अब हमें भी प्रेरणा लेकर अव्यक्त बनने के पुरुषार्थ की गति को तीव्र करना चाहिए। यही हमारा सन्देश है कि पूर्ण चाँदनी के समान हमारी आत्मा की चाँदनी हो और बाप की तरह हम भी जय-विजय प्राप्ति की तैयारी करें।